आक्षेपणीं१ (आक्षिप्यते मोहात्तत्वं प्रत्याकृष्यते श्रोताऽनयेत्याक्षेपणी। चतुर्विधा सा आयारक्खेवणी, ववहारक्खेवणी, पण्णत्तिक्खेवणी, दिट्ठिवायक्खेवणी। आचारो लोचास्नानादिः, व्यवहारःकथंचिदापन्नदोष-व्यपोहाय प्रायश्चितलक्षणः, प्रज्ञप्तिश्च संशयापन्नस्य मधुरवचनैः प्रज्ञापना दृष्टिवादश्च श्रोत्रपेक्षया सूक्ष्मजीवादिभावकथनम्। विज्जाचरणं च तवो य पुरिसकारो य समिइ गुत्तीओ। उवइस्सइ खलु जहियं कहाइ अक्खेवणीइरसो।। अभि. रा. को. (अक्खेवणी)) तत्त्वविधानभूतां विक्षेपणीं २ (विक्षिप्यते सन्मार्गात्कुमार्गे कुमार्गाव्दा सन्मार्गे श्रोताऽनयेति विक्षेपणी। सा चउव्विहा पण्णत्ता। तं जहा, (१) ससमयं कहेत्ता परसमयं कहेइ। (२) परसमयं कहेत्ता ससमयं ठावित्ता भवइ। (३) सम्मावायं कहेइ, सम्मावायं कहेत्ता मिच्छावायं कहेइ। (४) मिच्छावायं कहेत्ता सम्मावायं ठावइत्ता भवइ।। जा ससमयवज्जा खलु होइ कहा लोगवेयसंजुत्ता। परसमयाणं च कहा एसा विक्खेवणी णाम । अभि. रा. को. (विक्खेवणी).) तत्त्वदिगन्तशुध्दिम्।

संवेगिनीं धर्मफलप्रपञ्चां निर्वेदिनीं ३ (मु. निर्वेगिनीं) चाह कथां विरागाम् ४ (आक्खेवणी कहा सा विज्जाचरणमुवदिस्सदे जत्थ। ससमयपरसमयगदा कथा दु विक्खेवणी णाम।। संवेयणी पुण कहाणाण चरित्तं तववीरियइड्ढिगदा। णिव्वेयणी पुण कहा सरीरभोगे भवोघे य।। मूलारा. ६५६. ६५७.) ।।७५।।

एत्थ विक्खेवणी णाम कहा जिण-वयणमयाणंतस्स ण कहेयव्वा, ५ (वेणइयस्स पढमया कहा उ अक्खेवणी कहेयव्वा। तो ससमयगहियत्थे कहिज्ज विक्खेवणी पच्छा।। अक्खेवणि अक्खित्ता जे जीवा ते लभंति सम्मत्तं। विक्खेवणीए भज्जा गाढतरागं च मिच्छत्तं।। अभि. रा. को. (धम्मकहा).) अगहिद-स-समय-सब्भावो-पर-समय-संकहाहि वाउलिद-चित्तो मा मिच्छत्तं गच्छेज्ज त्ति तेण तस्स विक्खेवणीं मोत्तूण सेसाओ तिण्णि वि कहाओ कहेयव्वाओ । तदो गहिद-ससमयस्स६ (मु. गहिद-समयस्स।) उवलध्द-पुण्ण-पावस्स जिण-सासणे अट्ठि-मज्जाणुरत्तस्स७ (भावाणुरागपेमाणुरागमज्जाणुरागरत्तो वा। धम्माणुरागरत्तो य होइ जिणसासणे णिच्चं ।। मूलारा ७३७.) जिण-वयण-

---

तत्त्वोंका निरुपण करनेवाली आक्षेपणी कथा है। तत्त्वसे दिशान्तरको प्राप्त हुई दृष्टियोंका शोधन करनेवाली अर्थात् परमतकी एकान्त दृष्टियोंका शोधन करके स्वसमयकी स्थापना करनेवाली विक्षेपणी कथा है। विस्तारसे धर्मके फलका वर्णन करनेवाली संवेगिनी कथा है और वैराग्य उत्पन्न करनेवाली निर्वेदिनी कथा है।

इन कथाओंका प्रतिपादन करते समय जो जिनवचनको नहीं जानता है अर्थात् जिसका जिनवचनमें प्रवेश नहीं है, ऐसे पुरुषको विक्षेपणी कथाका उपदेश नहीं करना चाहिये, क्योंकि, जिसने स्वसमयके रहस्यको नहीं जाना है और परसमयकी प्रतिपादन करनेवाली कथाओंके सुननेसे व्याकुलित चित्त होकर वह मिथ्यात्वको स्वीकार न कर लेवे, इसलिये स्वसमयके रहस्यको नहीं जाननेवाले पुरुषको विक्षेपणी कथाका उपदेश न देकर शेष तीन कथाओंका उपदेश देना चाहिये। उक्त तीन कथाओंव्दारा जिसने स्वसमयको भलीभांति समझ लिया है, जो पुण्य और पापके स्वरुपको जानता है, जिस तरह मज्जा अर्थात् हड्डियोंके मध्यमें रहनेवाला

णिव्विदिगिच्छस्स भोगरइ-विरदस्स तव-सील-णियम-जुत्तस्स पच्छा विक्खेवणी कहा कहेयव्वा। एसा अकहा वि पण्णवयंतस्स परुवयंतस्स तदा कहा होदि १ (परसमओ उभयं वा सम्मद्दिट्ठिस्स ससमओ जेणं।। तो सव्वज्झयणाइं ससमयवत्तव्वनिययाइं।। मिच्छत्तमयसमूहं सम्मत्तं जं च तदुवगारम्मि। वट्टइ परसिध्दंतो तो तस्स तओ ससिध्दंतो।। वि. भा. ९५६, ९५७.) तम्हा पुरिसंतरं पप्प समणेण कहा कहेयव्वा। पण्हादो हद-णट्ठ-मुट्ठि-चिंता-लाहालाह-सुह-दुक्ख-जीविय-मरण-जय-पराजय-णाम-दव्वाउ-संखं च परुवेदि। विवागसुत्तं२ (शुभाशुभकर्मणां तीव्रमंदमध्यमविकल्पशक्तिरुपानुभागस्य द्रव्यक्षेत्रकालभावाश्रयाफलदानपरिणतिरुप: उदयो विपाक:, तं सूत्रयति वर्णयतीति विपाकसूत्रम्। गो. जी., जी. प्र. टी. ३५७. विवागसुए णं सुक्कडदुक्कडाणं कम्माणं फलविवागे आघसविज्जंति । x x ! सम. सू. १४६.) णाम अंगं एग-कोडि-चउरासीदि-लक्ख-पदेही १८४००००० पुण्ण-पाव-कम्माणं विवायं वण्णेदि । एक्कारसंगाणं सव्व-पद-समासो चत्तारि कोडीओ पण्णारह लक्खा बे सहस्सं च ४१५०२००० । दिट्ठिवादो ३ (दृष्टीनां त्रिषट्युत्तरत्रिशतसंख्यानां मिथ्यादर्शनानां वादोऽनुवाद:, तन्निराकरणं च यस्मिन् क्रियते तद्दृष्टिवादं नाम । गो. जी., जी. प्र. टी., ३६०. दिट्ठिवाए णं सव्वभावपरुवणया आघविज्जंति । से समासओपंचविहे, परिकम्मं सुत्ताइं पुव्वगयं अणुओगो चूलिया। परिकम्मे सत्तविहे x x x। सुत्ताइं अट्ठासीति भवंतीति मक्खयाइं x x x। पुव्वगयं चउद्दसविहं पन्नत्तं। अणुओगे दुविहे पन्नते x x x। जण्णं आइल्लाणं चउण्हं पुव्वाणं चूलियाओ, सेसाइं, पुव्वाइं, अचूलियाइं सेत्तं चूलियाओ। सम. सू. १४७.) णाम अंगं बारसमं तस्य दृष्टीवादस्य स्वरुपं निरुप्यते-कौत्कल-काण्ठेविध्दि-कौशिक-हरिश्मश्र-माध्दंपिक-रोमश-हारीत-मुण्ड-

----

रस हड्डीसे संसक्त होकर ही शरीरमें रहता है, उसी तरह जो जिनशासनमें अनुरक्त है, जिनवचनमें जिसको किसी प्रकारकी विचिकित्सा नहीं रही है, जो भोग और रतिसे विरक्त है और जो तप, शील और नियमसे युक्त है ऐसे पुरुष को ही पश्चात् विक्षेपणी कथाका उपदेश देना चाहिये ं प्ररुपण करके उत्तमरुपसे ज्ञान करानेवालेके लिये यह अकथा भी तब कथारुप ही जाती है ं इसलिये योग्य पुरुषको प्राप्त करके ही साधुको कथाका उपदेश देना चाहिये ं यह प्रश्नव्याकरण नामका अंग प्रश्नके अनुसार हत,नष्ट, मुष्टी, चिंता, लाभ, अलाभ, सुख, दु:ख, जीवित, मरण, जय, पराजय, नाम, द्रव्य, आयु और संख्याका भी प्ररुपण करता है ं विपाकसूत्र नामका अंग एक करोड चौरासी लाख पदोंके द्वारा पुण्य और पापरुप कर्मोंके फलोंकए र्वणन करता है ं ग्यारह अंगोके कुल पदोंका जोड चार करोड पन्द्रह लाख दो हजार पद है ं दृष्टीवाद नामका बरहवां अंग है ं आगे उसके स्वरुपका निरुपण करते हैं- दृष्टीवाद नामके अंगमें कौत्कल, काण्ठेविध्दि, कौशिक, हरिश्मश्रु, मांधपिक, रोमश, हारीत, मुण्ड और अश्वलायन आदि क्रियावादियोंके एकसौ अस्सी मतोंका, मरीचि, कपिल, उलूक,गार्ग्य, व्याघ्रभूति,

---

अश्वलायनादीनां क्रियावादि-दृष्टिनामशीतिशतम् मरीचिकपिलोलूक-गार्ग्य-व्याघ्रभूति-वाव्दलि-माठर-मौद्गल्यायनादीनामक्रियावाददृष्टिनां चतुरशीति:, शाकल्य-वल्कल-कुथुमि-सात्यमुग्रि-नारायण-कण्व-माध्यंदिन-मोद-पैप्पलाद-बादरायण-स्वेष्टकृदैति-कायन-वसु-जैमिन्यादीनामज्ञानिकदृष्टिंना सप्तषष्टि:, वशिष्ठ-पाराशर-जतुकर्ण-वाल्मिकि-रोमहर्षणी-सत्यदत्त-व्यासैलापुत्रौपमन्यवैन्द्रदत्तास्थूणादीनां वैनयिकदृष्टिनां व्दात्रिंशत्१ (कौत्कलकांडेविध्दिकौशिकहरिश्मश्रुमांछयिकरोमसहारीतमुंडाश्वलायलादीनां क्रियावाददृष्टिनाम-शीतिशतं।

मरीचकुमारकपिलोलूकगार्ग्यव्याघ्रभूतिवाव्दलिमाठमौद्गल्यायनादीनामक्रियावाददृष्टिनां चतुरशीति:। शाकल्यवल्कलकुथुमिसात्यमुद्गिनारायणकंठमाध्यंदिनमोदपैप्पलादवादरायणांबष्टीकृदैरिकायनव-सुजैमिन्यादीनाम ज्ञानकुदृष्टीनां सप्तषष्टि:। वशिष्ठपाराशरजतुकीर्णवाल्मीकिरोमहर्षिसत्यदत्तव्यासैलापुत्रो-पमन्यवैन्द्रदत्तायस्थूणादीनां वैनयिकदृष्टिनां व्दात्रिंशत्। त. रा. वा. पृ. ५१ 'काणेविध्दि' स्थाने 'कंठेविध्दि', 'मांध्दपिक', स्थाने, 'माधंपिक', 'कण्व', 'कठ', स्थाने, 'स्वेष्टकृत्', स्थाने, 'स्विष्ठिक्य', 'जतुकर्ण', स्थाने, 'जतुष्कर्ण', 'अयस्थूण', स्थाने,

'अगस्त्य', पाठा उपलभ्यन्ते। गो. जी., जी. प्र., टी. ३६०.) एषां दृष्टिशतानां त्रयाणां त्रिषष्ट्युत्तराणां प्ररुपणं निग्रहश्च दृष्टिवादे क्रियते।

एत्थ किमायारादो, एवं पुच्छा सव्वेसिं। णो आयारादो, एवं वारणा सव्वेसिं, दिट्ठिवादादो। तस्स उवक्कमो पंचविहो-आणुपुव्वी णामं पमाणं वत्तव्वदा अत्थाहियारो चेदि। तत्थ आणुपुव्वी तिविहा-पुव्वाणुपुव्वी पच्छाणुपुव्वी जत्थतत्थाणुपुव्वी चेदि।

वाद्बलि, माठर और मौद्गल्यायन आदि अक्रियावादियोंके चौरासी मतोंका, शाकल्य, वल्कल, कुथुमि, सात्यमुग्रि, नारायण, कण्व, माध्यंदिन, मोद, पैप्पलाद, वादरायण स्वेष्टकृत, ऐतिकायन वसु और जैमिनी आदि अज्ञानवादियोंके सरसठ मतोंका तथा वशिष्ठ, पाराशर, जतुकर्ण, वाल्मीकी, रोमहर्षणी, सत्यदत्त, व्यास, एलापुत्र, औपमन्यु, ऐन्द्रदत्त और अयस्थूण आदि वैनयिकवादियोंके बत्तीस मतोंका वर्णन और निराकरण किया गया है। पूर्वमें कहे हुए क्रियावादी आदिके कुल भेद तीनसौ त्रेसष्ठ होते हैं।

इस शास्त्रमें क्या आचारांगसे प्रयोजन है, क्या सूत्रकृतांगसे प्रयोजन है, इस तरह बारह अंगोके विषयमें पृच्छा करनी चाहिये। और इस तरह पुछे जाने पर यहां पर न तो आचारांगसे प्रयोजन है, न सूत्रकृतांग आदिसे प्रयोजन है इस तरह सबका निषेध करके यहां पर दृष्टिवाद अंगसे प्रयोजन है ऐसा उत्तर देना चाहिये। उसका उपक्रम पांच प्रकारका है- आनुपूर्वी, नाम, प्रमाण, वक्तव्यता और अर्थाधिकार। इनमेंसे पूर्वानुपूर्वी, पश्चादानुपूर्वी और यथातथानुपूर्वीके भेदसे आनुपूर्वी तीन प्रकारकी है। यहां पूर्वानुपूर्वीसे गिनने पर बारहवें

एत्थ पुव्वाणुपुव्वीए गणिज्जमाणे बारसमादो, पच्छाणुपुव्वीए गणिज्जमाणे पढमादो, जत्थतत्थाणुपुव्वीए गणिज्जमाणे दिट्ठिवायादो। णामं-दिट्ठिओ वददीदि दिट्ठिवादं ति गुणणामं। पमाण-अक्खर-पद-संघाद-पडिवत्ति-अणियोगद्दारेहि संखेज्जं, अत्थदो अणंतं। वत्तव्वदा-तदुभयवत्तव्वदा। तस्स पंच अत्थाहियारा हवंति-परियम्म १ (परित: सर्वत: कर्माणि गणितकरणसूत्राणि यस्मिन् तत्परिकर्म। गो. जी., जी. प्र., टी. ३६१.) - सुत्त २ (सूचयति कुदृष्टिर्शनानीति सूत्रम्। जीव: अबंधक: अकर्ता निर्गुण: अभोक्ता स्वप्रकाशक: परप्रकाशक: अस्त्येव जीव: नास्त्येव जीव: इत्यादिक्रियाक्रिया ज्ञानविनयकुदृष्टिंना मिथ्यादर्शनानि पूर्वपक्षतया कथयति। गो. जी. जी. प्र. टी ३६१.) पढमाणि-योग३ (प्रथमं मिथ्यादृष्टिमव्रतिकमव्युत्पन्नं वा प्रतिपाद्यमाश्रित्य प्रवृतोऽनुयोगोऽधिकार: प्रथमानुयोग:।

चतुर्विंशतितीर्थंकरव्दादशचक्रवर्तिनवबलदेवनववासुदेवनववासुदेवप्रतिवासुदेवरुपत्रिषष्टिशलाकापुरुषपुराणानि न वर्णयति। गों. जी., जी. प्र., टी. ३६२.) पुव्वगय ४ (इह तीर्थकरस्तीर्थप्रवर्तनकाले गणधरान् सकलश्रुतार्थावगाहनसमर्थानिधिकृत्य पूर्वं पूर्वगतं सूत्रार्थं भाषते, ततस्तानि पूर्वाण्युच्यन्ते। गणधरा: पुन: सूत्ररचनां विदधत: आचारादिक्रमेण विदधति स्थापयन्ति वा। अन्ये तु व्याचक्षते, पूर्वं पूर्वगतसूत्रार्थमर्हन् भाषते गणधरा अपि पूर्वं पूर्वगतसूत्रं विरचयन्ति पाश्चादाचारादिकम्। न. सू. पृ. २४०.) - चूलिया ५ (सूइदत्थाणं विसेसपरुविया चूलिया णाम। धवला. अ. पृ. ५७३. दृष्टिवादे परिकर्मसूत्रपूर्वानुयोगेऽनुक्तार्थसंग्रहपरा ग्रन्थपध्दतय:। नं. सू. पृ. २४६.) चेदि। जं तं परियम्म तं पंचविहं। तं जहा चंदपण्णत्ती सूरपणत्ती जंबूदीवपण्णत्ती दीवसायरपण्णत्ती वियाहपण्णत्ती चेदि। तत्थ चंदनपण्णत्ती ६ (चन्द्रप्रज्ञप्ति: चन्द्रस्य विमानायु:परिवारऋध्दिगमनहानिवृध्दिसकलार्धचतुर्थांशग्रहणादीन् वर्णयति। (गो. जी., जी. प्र., टी. ३६२)) णाम छत्तीस-लक्ख-पंच-पद-सहस्सेहि ३६०५००० चंदाउ-परिवारिध्दि-गइ-बिंबुस्सेह -

---

अंगसे, पश्चादानुपूर्वीसे गिनने पर पहलेसे और यथातथानुपूर्वीसे गिनने पर दृष्टिवाद अंगसे प्रयोजन है।

नाम --- इसमें अनेक दृष्टियोंका वर्णन किया गया है, इसलिये इसका 'दृष्टिवाद' यह गौण्यनाम है।

प्रमाण --- अक्षर, पद, संघात, प्रतिपत्ति और अनुयोग आदिकी अपेक्षा संख्यातप्रमाण और अर्थकी अपेक्षा अनन्तप्रमाण है।

वक्तव्यता --- इसमें तदुभयवक्तव्यता है।

उस दृष्टिवादके पांच अधिकार हैं- परिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग, पूर्वगत और चूलिका। उनमेंसे चन्द्रप्रज्ञप्ति, सूर्यप्रज्ञप्ति, जम्बूव्दीपप्रज्ञप्ति, व्दीपसागरप्रज्ञप्ति और व्याख्याप्रज्ञप्ति इस तरह परिकर्मके पांच भेद है।

चन्द्रप्रज्ञप्ति नामका परिकर्म छत्तीस लाख पांच हजार पदोंकेव्दारा चन्द्रमाकी आयु,

---

वण्णणं कुणइ। सूर पण्णत्ती १ (सूर्यप्रज्ञप्ति: सूर्यस्यायुर्मंडलपरिवारऋध्दिगमनप्रमाणग्रहणादीन् वर्णयति। गो. जी., जी. प्र., टी. ३६२.) पंच-लक्ख-तिण्णि-सहस्सेहि ५०३००० सूरस्सायुभोगोवभोग-परिवारिध्दि-गइ-बिंबुस्सेह-दिण-किरणुज्जोव-वण्णणं-कुणइ। जंबूदीव पण्णत्ती२ (जम्बूव्दीपप्रज्ञप्ति:

जम्बूव्दीपगतमेरुकुलशैह्रदवर्षकुंडवेदिकावनखंडव्यंतरावासमहानद्यादीन् वर्णयति। गो. जी., जी. प्र., टी. ३६२.) तिण्णि-लक्ख-पंचवीस-पद-सहस्सेहि ३२५००० जंबूदीवे णाणाविह-मणुयाणं भोग-कम्म-भूमियाणं अण्णेसिं च पव्वद-दह-णइ-वेइया-वंसावासाकट्टिम ३ (मु. वेइयाणं वस्सा-।) जिणहरादीणं वण्णणं कुणइ। दीवसायरपण्णत्ती४ (व्दीपसागरप्रज्ञप्ति: असंख्यातव्दीपसागराणां स्वरुपं तत्रस्थितज्योतिर्वानभावनावासेपु विद्यमानाकृत्रिमजिनभवनादीन् वर्णयति। गो. जी., जी. प्र. टी. ३६२.) बावण्ण-लक्ख-छत्तीस-पद-सहस्सेहि ५२३६००० उध्दार-पल्ल-पमाणेण दीव-सायर-पमाणं अण्णं पि दीव-सायरंतब्भूदत्थं बहु-भेयं वण्णेदि। वियाहपण्णत्ती५ (रुप्यरुपिजीवाजीवद्रव्याणां भव्याभव्यभेदप्रमाणलक्षणानां अनंतसिध्दपरस्परासिध्दानां अन्यवस्तूनां च वर्णन करोति। गो. जी., जी. प्र., टी. ३६२.) णाम चउरासिदी-लक्ख-छत्तीस-पद-सहस्सेहि ८४३६००० रुवि-अजीव-दव्वं अरुवि-अजीव-दव्वं भवसिध्दिय-अभवसिध्दिय-रासिं च वण्णेदि । सुत्तं अट्ठासीदि-लक्ख-पदेहि ८८००००० अबंधओ अलेवओ ६ (मु. अवलेवओ।) अकत्ता अभोत्ता णिग्गुणो सव्वगओ अणुमेत्तो णत्थि जीवो जीवो चेव अत्थि पुढवियादीणं समुदएण जीवो

परिवार, ऋध्दि, गति और बिम्बकी उंचाई आदिका वर्णन करता है। सूर्यप्रज्ञप्ति नामका परिकर्म पांच लाख तीन हजार पदोंकेव्दारा सूर्यकी आयु, भोग, उपभोग, परिवार, ऋध्दि, गति, बिम्बकी, उंचाई, दिनकी हानि-वृध्दि, किरणोंका प्रमाण और प्रकाश आदिका वर्णन करता है। जम्बूव्दीपप्रज्ञप्ति नामका परिकर्म तीन लाख पच्चीस हजार पदोंकेव्दारा जम्बूव्दीपस्थ भोगभूमि और कर्मभूमिमें उत्पन्न हुए नाना प्रकारके मनुष्य तथा दूसरे तिर्यंच आदिका और पर्वत, द्रह, नदी, वेदिका, वर्ष, आवास, अकृत्रिम जिनालय आदिका वर्णन करता है। व्दीपसागरप्रज्ञप्ति नामका परिकर्म बावन लाख छत्तीस हजार पदोंके व्दारा उध्दारपल्यसे व्दीप और समुद्रोंके प्रमाणका तथा व्दीपसागरके अन्तर्भूत नाना प्रकारके दूसरे पदार्थोंका वर्णन करता है। व्याख्याप्रज्ञप्ति नामका परिकर्म चौरासी लाख छत्तीस हजार पदोंके व्दारा रुपी अजीवद्रव्य अर्थात पुद्गल, अरुपी अजीवद्रव्य अर्थात् धर्म, अधर्म, आकाश और काल, भव्यसिध्द और अभव्यसिध्द जीव, इन सबका वर्णन करता है,

दृष्टिवाद अंगका सूत्र नामका अर्थाधिकार अठासी लाख पदोंकेव्दारा जीव अबन्धक ही है, अलेपक ही है, अकर्ता ही है, अभोक्ता ही है, निर्गुण ही है, अणुप्रमाण ही है, जीव नास्तिस्वरुप ही है, जीव अस्तिस्वरुप ही है, पृथिवी आदिक पांच भूतोंके समुदायरुपसे जीव उत्पन्न होता है, चेतना रहित है, ज्ञानके विना भी सचेतन है, नित्य ही है, अनित्य ही है,

---

उप्पज्जइ णिच्चेयणो णाणेण विणा सचेयणो णिच्चो अणिच्चो अप्पेति वण्णेदि। तेरासियं १ (तेरासिय (त्रैराशिकः) गोशालप्रवर्तिता आजीवीकाः पाखण्डिनस्त्रैराशिका उच्यन्ते । कस्मादिति चेदुच्यते, इह ते सर्व वस्तु त्र्यात्मकमिच्छन्ति। तद्यथा, जीवोऽजीवो जीवाजीवश्च, लोक अलोका लोकालोकाश्च, सदसत्सदसत्। नयचिन्तायामपि त्रिविधं नयमिच्छन्ति। तद्यथा, द्रव्यास्तिकं पर्यायास्तिकसुभयास्तिकं च। ततस्त्रिभी राशिभिश्चरन्तीति त्रैराशिकाः नं. सू. पृ. २३९.) णियदिवादं २ (णियतिवाद (दैववादः) जत्तु जदा जेण जहा जस्स य णियमेण होदि तत्तु तदा। तेण तहा तस्स हवे इदि वादो णियदिवादो दु ।। गो. क. ८८२. ये तु नियतिवादिनस्ते ह्येवमाहुः, नियतिर्नाम तत्त्वान्तरमस्ति यव्दशादेते भावाः सर्वेऽपि नियतेनैव रुपेण प्रादुर्भावमश्नुवते, नान्यथा। तथाहि, यद्यदा यतो भवति तत्तदा तत एव नियतेनैव रुपेण भवदुपलभ्यते, अन्यथा कार्यभावव्यवस्था प्रतिनियतव्यवस्था च न भवेत् नियामकाभावात् । तत एवं कार्यनैयत्यतः प्रतीयमानामेनां नियतिं को नाम प्रमाणपथकुशलो बाधितुं क्षमते? मा प्रापदन्यत्रापि प्रमाणपथव्याघातप्रसङ्गअभि. रा. को. (णियइ)). विण्णाणवादं ३ (विण्णाणवाद (विज्ञानाव्दैतवादः) प्रतिभासमानस्याशेषस्य वस्तुनो ज्ञानस्वरुपान्तःप्रविष्टत्वप्रसिध्देः संवेदनमेव पारमार्थिकं तत्त्वम् । तथाहि, यदवभासते तज्ज्ञानमेव यथा सुखादि, अवभासन्ते च भावा इति । x x x तथा येव्देद्यते तध्दि ज्ञानादभिन्नम् यथा विज्ञानस्वरुपम् वेद्यन्ते च नीलादय इत्यतोऽपि विज्ञानाव्दैतसिध्दिरिति । न्या. कु. च. पृ. ११९. बाह्यार्थनिरपेक्षं ज्ञानाव्दैतमेव ये बौध्दविशेषा मन्वते ते विज्ञानवादिनः। तेषां राध्दान्तो विज्ञानवादः। अभि. रा. को. (विण्णाणवाद.)) सद्दवादं ४ (सद्दवाद (शब्दब्रह्मवादः) सकलं योगजमयोगजं वा प्रत्यक्षं शब्दब्रह्मोल्लेख्येवावभासते बाह्याघ्यात्मिकार्थेषूत्पद्यमानस्यास्य शब्दानुविध्दत्वेनैवोत्पत्तेः, तत्संस्पर्शवैकल्ये प्रत्ययानां प्रकाशमानताया दुर्घटत्वात्। वाग्रूपता हि शाश्वती प्रत्यवमर्शिनी च, तदभावे तेषां नापरं रुपमवशिष्यते। न्या. कु. च. पृ. १३९. १४०.) पहाणवादं ५ (प्रधानवादः) सत्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रधानम्। प्रधानस्य वादः प्रधानवादः सांख्यवाद इत्यर्थः। सांख्यानां हि पुमर्थापेक्षप्रकृतिपरिणाम एव लोकः। अभि. रा. को. (पहाणकड.)(पहाणकड.)) दव्ववादं ६ (दव्ववाद (द्रव्यैकान्तवादी नित्यवादः) यत्कापिलं दर्शनं सांख्यमतं एतद् द्रव्यास्तिकनयस्य वक्तव्यम्। तदुक्तम् जं काविलं दरिसणं एयं दव्वट्ठियस्स वत्तवं। स. त. ३, ४८.) पुरिसवादं ७ (पुरिसवाद (पौरुषवादः) आलसड्ढो णिरुच्छाहो फलं किंचिं ण भुंजदे। थणक्खीरादिपाणं वा पउरुसेण विणा ण हि ।। गो. क. ८९०. अथवा, पुरिसवाद पुरुषाव्दैतवादः- एक्को चेव महप्पा पुरिसो देवो य सव्ववावी य । सव्वंगनिगूढो वि य सचेयणो निग्गुणो परमो।। गो. क. ८८१. पुरुष

एवैक: सकललोकस्थितीसर्गप्रलयहेतु: प्रलयेऽप्यलुप्तज्ञानातिशयशक्तिरिति। तथा चोक्तम्, ऊर्णनाभ इवांशूनां चन्द्रकान्त इवाम्भसाम्। प्ररोहाणामिव प्लक्ष: स हेतु: सर्वजन्मिनाम् ।। इति । तथा पुरुष एवेदं सर्व यद् भूतं यच्च भाव्यम् इत्यादि मन्वानानां वाद: पुरुषवाद: । अभि. रा. को. (पुरिसवाइ)) च वण्णेदि । उत्तं च --

---

इत्यादि रुपसे क्रियावादी, अक्रियावादी, अज्ञानवादी और विनयवादियोंके तीनसौ त्रेसठ् मतोंका पूर्वपक्षरुपसे वर्णन करता है। यह त्रैराशिकवाद, नियतिवाद, विज्ञानवाद, शब्दवाद, प्रधानवाद, द्रव्यवाद, और पुरुषवादका भी वर्णन करता है। कहा भी है ---

---

अट्ठासी १ (सुत्ताइं अट्ठासीति भवंति। तं जहा, उजुगं परिणयापरिणयं बहुभंगियं विप्पच्चइयं विनयचरियं अणंतरं परंपरं समाणं संजूहं (मासाणं) संभिन्नं अहाच्चयं (अहव्वायं नन्द्यां) सोवत्थि (वत्तं यं) णंदावत्तं बहुलं पुट्ठापुट्ठं वियावत्तं एवंभूय दुआवत्तं वत्तमाणप्पयं समभिरुढं सव्वओभद्दं पणाम (पस्सासं नंद्या) दुपडिग्गहं इच्चेयाइं बावीसं त्ताइं छिण्णछेअणइआइं ससमयसुत्तपरिवाडीए इच्चेआइं बावीसं सुत्ताइं अच्छिन्न छेयनइयाइं आजीवियसुत्तपरिवाडीए एवामेव सपुव्वावरेण अट्ठासीति सुत्ताइं भवंति। सम. सू. १४७)-अहियारेसु चउण्हमहियारणमत्थणिद्देसो २ (मु. मत्थि णिद्देसो।)

पढमो अबंधयाणं विदियो तेरासियाण बोध्दवो ।।७६।।

तदियो य णियइ-पक्खे हवइ चउत्थो ससमयम्मि ।।

पढमाणियोगो पंच-सहस्स-पदेहि ५००० पुराणं वण्णेदि । उत्तं च----

बारसविहं पुराणं जगदिट्ठं ३ ('जं. दिट्ठ ' इति पाठ: प्रतिभाति।) जिणवरेहि सव्वेहिं।

तं सव्वं वण्णेदि हु जिणवंसे रायवंसे य ।।७७।।

पढमो अरहंताणं विदियो पुण चक्कवट्टि-वंसो दु ।

विज्जहराणं तदियो चउत्थयो वासुदेवाणं ।।७८।।

चारण-वंसो तह पंचमो दु छट्ठो य पण्ण-समणाणं ।

सत्तमओ कुरुवंसो अट्ठमओ तह य हरिवंसो ।।७९।।

णवमो य इक्खुयाणं दसमो वि य कासियाण बोध्दवो ।

वाईणेक्कारसमो बारसमो णाह-वंसो दु ।।८०।।

पुव्वगयं पंचाणउदि-कोडि-पण्णस-लक्ख-पंच-पदेहि ९५५०००००५ उप्पाय -

---

इस सूत्र नामक अर्थाधिकारके अठासी अधिकारोंमेंसे चार अधिकारोंका अर्थनिर्देश मिलता है। उनमें पहला अधिकार अबन्धकोंका दूसरा त्रैराशिकवादियोंका, तीसरा नियतिवादका समझना चाहिये। तथा चौथा अधिकार स्वसमयका प्ररुपक है ।।७६।।

दृष्टिवाद अंगका प्रथमानुयोग अर्थाधिकार पांच हजार पदोंकेव्दारा पुराणोंका वर्णन करता है। कहा भी है---

जिनेन्द्रदेवने जगतमें बारह प्रकारके पुराणोंका उपदेश दिया है। वे समस्त पुराण जिनवंश और राजवंशोका वर्णन करते हैं। पहला अरिहंत अर्थात् तीर्थंकरोंका, दूसरा चक्रवर्तियोंका, तीसरा विद्याधरोंका, चौथा नारायण, प्रतिनारायणोंका, पांचवां चारणोंका, छठवां प्रज्ञाश्रमणोंका वंश है। तथा सातवां कुरुवंश, आठवा हरिवंश, नववां इक्षाकुवंश, दशवां काश्यपवंश, ग्यारहवां वादियोंका वंश और बारहवां नाथवंश है।। ७७ - ८०।।

दृष्टिवाद अंगका पूर्वगत नामका अर्थाधिकार पंचानवे करोड पचास लाख और पांच पदोंव्दारा उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य आदिका वर्णन करता है।

व्वय-धुवत्तादीणं वण्णणं कुणइ। चूलिया पंचविहा-जलगया थलगया मायागया रुवगया आगासगया चेदि। तत्थ जलगया दो-कोडि-णव-लक्ख-एऊण-णवुइ-सहस्स-बे-सद-पदेहि २०९८९२०० जलगमण-जलत्थंभण-कारण-मंत-तंत-तवच्छरणाणि वण्णेदि १ (जलगता चूलिका जलस्तम्भनजलगमनाग्निस्तम्भाग्निभक्षणाग्न्यासनाग्निप्रवेशनादिकारणमंत्रतंत्र-तपश्चरणादीन् वर्णयति । गो. जी., जी. प्र., टी. ३६२.)[९] थलगया णाम तेत्तिएहि चेव पदेहि २०९८९२०० भूमि-गमण-कारण-मंत-तंत-तवच्छरणाणि वत्थु-विज्जं भूमि-संबंधमण्णं पि सुहासुह-कारणं वण्णेदि २ (स्थलगता चूलिका मेरुकुलशैलभूम्यादिषु प्रवेशनशीघ्रगमनादिकारणमंत्रतंत्रतपश्चरणादीन् वर्णयति। गो. जी., जी. प्र., टी. ३६२.) मायागया तेत्तिएहि चेय पदेहि २०९८९२०० इंद-जालं वण्णेदि३ (मायागता चूलिका मायारुपेन्द्रजालविक्रियाकारणमंत्रतंत्रतपश्चरणादीन् वर्णयति। गो.जी., जी. प्र. टी ३६२.) रुवगया तेत्तिएहि चेय पदेही २०९८९२०० सीह-हय-हरिणादि-रुवायारेण परिणमण-हेदु-मंत-तंत-तवच्छरणाणि चित्त-कट्ठ-लेप्प-लेण-कम्मादि-लक्खणं च वण्णेदि४ (रुपगता चूलिका सिंहकरितुरगरुरुनरतरुहरिणशशक-

वृषभव्यघ्रादिरुपपरावर्तनकारणमंत्रतंत्र-तपश्चरणादीन्
चित्रकाष्ठलेप्योत्खननादिलक्षणधातुवादरसवादखन्यावादादींश्च वर्णयति। गो. जी., जी. प्र., टी. ३६२.)
आयासगया णाम तेत्तिएहि चेय पदेहि २०९८९२०० आगास-गमण-णिमित्त-मंत-तंत-तवच्छरणाणि वण्णेदि५ (
आकाशगता चूलिका आकाशगमनकारणमंत्रतंत्रतपश्चरणादीन् वर्णयति। गो. जी., जी. प्र. टी. ३६२.)
चूलिया-सव्व-पद-समासो-दस-कोडीओ एगूण-पंचास-लक्ख-छायालसहस्स-पदाणि १०४९४६०००।

जलगता, स्थलगता, मायागता, रुपगता और आकाशगताके भेदसे चूलिका पांच प्रकारकी है। उनमेंसे, जलगता चूलिका दो करोड नौ लाख नवासी हजार दोसौ पदोंव्दारा जलमें गमन और जलस्तम्भनके कारणभूत मन्त्र, तन्त्र, और तपश्चर्यारुप अतिशय आदिका वर्णन करती है। स्थलगता चूलिका उतने ही २०९८९२०० पदोंव्दारा पृथिवीके भीतर गमन करनेके कारणभूत मन्त्र, तन्त्र और तपश्चरणरुप आश्चर्य आदिका तथा वास्तुविद्या और भूमिसंबन्धी दूसरे शुभ-अशुभ कारणोंका वर्णन करती है । मायागता चूलिका उतने ही २०९८९२०० पदोंव्दारा (मायारुप) इन्द्रजाल आदिके कारणभूत मन्त्र, तन्त्र और तपश्चरणका वर्णन करती है। रुपगता चूलिका उतने ही २०९८९२०० पदोंव्दारा सिंह, घोडा और हरिणादि के स्वरुपके आकाररुपसे परिणमन करनेके कारणभूत मन्त्र तन्त्र और तपश्चरणका तथा चित्रकर्म, काष्ठकर्म, लेप्यकर्म और लेनकर्म आदिके लक्षणका वर्णन करती है। आकाशगता चूलिका उतने ही २०९८९२०० पदोंव्दारा आकाशमें गमन करनेके कारणभूत मन्त्र, तन्त्र और तपश्चरणका वर्णन करती है। इन पांचो ही चूलिकाओंके पदोंका जोड दश करोड उनचास लाख -

---

एत्थ किं परियम्मादो, किं सुत्तादो? एवं पुच्छा सव्वेसिं। णो परियम्मादो, णो सुत्तादो, एवं वारणा सव्वेसिं। तस्स उवक्कमो पंचविहो, आणुपुव्वी णामं पमाणं वत्तव्वदा अत्थाहियारो चेदि। तत्थाणुपुव्वी तिविहा, पुव्वाणुपुव्वी पच्छाणुपुव्वी जत्थतत्थाणुपुव्वी चेदि। एत्थ पुव्वाणुपुव्वीए गणिज्जमाणे चउत्थादो, पच्छाणुपुव्वीए गणिज्जमाणे विदियादो, जत्थतथाणुपुव्वीए गणिज्जमाणे पुव्वगयादो । पुव्वाणं गयं पत्त-पुव्व-सरुवं वा पुव्वगयमिदि गुणणामं। अक्खर-पद-संघाद-पडिवत्ति-अणियोगद्दारेहि संखेज्जं, अत्थदो पुण अणंतं। वत्तव्वदा ससमयवत्तव्वदा। अत्थाधियारो चोद्दसविहो। तं जहा-उत्पादपूर्वं अग्रायणीयं वीर्यानुप्रवादं अस्तिनास्तिप्रवादं ज्ञानप्रवादं सत्यप्रवादं आत्मप्रवादं कर्मप्रवादं प्रत्याख्याननामधेयं विद्यानुप्रवादं कल्याण-नामधेयं प्राणावायं क्रियाविशालं लोकबिन्दुसारमिति।

तत्थ उप्पादपुव्वं १ (वस्तुन: द्रव्यस्योत्पादव्ययध्रौव्याद्यनेकधर्मपूरकमुत्पादपूर्वम्। तच्च, जीवादिद्रव्याणां नानानय-विषयक्रमयौगपद्यसंभावितोत्पादव्ययध्रौव्याणि त्रिकालगोचराणि नवधर्मा भवन्ति। तत्परिणतं द्रव्यमपि नवविधम् उत्पन्नं उत्पद्यमानं उत्पत्स्यमानं नष्टं नश्यत् नक्ष्यत् स्थितं तिष्ठत् स्थास्यदिति नवप्रकारा भवन्ति । उत्पादादीनां प्रत्येकं नवविधत्वसंभवादेकाशीतिविकल्पधर्मपरिणतद्रव्यवर्णनं करोति। गो. जी., जी. प्र., टी. ३६६.) दसण्हं वत्थूणं १० बे-सद पाहुडाणं २०० कोडि-पदेहि

छ्यालीस हजार पद है।

इस जीवस्थान शास्त्रमें क्या परिकर्मसे प्रयोजन है? क्या सूत्रसे प्रयोजन है? इस तरह सबके विषयमें पृच्छा करनी चाहिये। यहां पर परिकर्मसे प्रयोजन नहीं है, सूत्रसे प्रयोजन नहीं है इस तरह सबका निषेध करके यहां पर पूर्वगतसे प्रयोजन है ऐसा उत्तर देना चाहिये। उसका उपक्रम पांच प्रकारका है -- अनुपूर्वी, नाम, प्रमाण, वक्तव्यता और अर्थाधिकार। उनमेंसे, पूर्वानुपूर्वी, पश्चादानुपूर्वी और यथातथानुपूर्वीके भेदसे आनुपूर्वी तीन प्रकारकी है। यहां पूर्वानुपूर्वीसे पश्चादानुपूर्वी और यथातथानुपर्वीके भेदसे आनुपूर्वी तीन प्रकारकी है। यहां पूर्वानुपूर्वीसे गिननेपर चौथे भेदसे, पश्चादानुपूर्वीसे गिननेपर दूसरे भेदसे और यथातथानुपूर्वीसे गिननेपर पूर्वगतसे प्रयोजन है जो पूर्वोंको प्राप्त हो, अथवा जिसने पूर्वोंके स्वरुपको प्राप्त कर लिया हो उसे पूर्वगत कहतें है। इसतरह 'पूर्वगत' यह गौण्यनाम है । वह अक्षर, पद, संघात प्रतिपत्ति और अनुयोगव्दारकी अपेक्षा संख्यात और अर्थकी अपेक्षा अनन्त-प्रमाण है। तीनों वक्तव्यताओंमेंसे यहां स्वसमयवक्तव्यता समझना चाहिये। अर्थाधिकारसे चौदह भेद हैं। वे ये हैं- उत्पादपूर्व, अग्रायणीयपूर्व, वीर्यानुप्रवादपूर्व, अस्तिनास्तिप्रवादपूर्व, ज्ञानप्रवादपूर्व, सत्यप्रवादपूर्व, आत्मप्रवादपूर्व, कर्मप्रवादपूर्व, प्रत्याख्यानपूर्व, विद्यानुप्रवादपूर्व, कल्याणवादपूर्व, प्राणावायपूर्व, क्रियाविशालपूर्व और लोकबिन्दुसारपूर्व।

उनमेंसे, उत्पादपूर्व दश वस्तुगत दोसौ प्राभृतोंकेएक करोड पदोंव्दारा जीव, काल

१०००००० जीव-काल-पोग्गलाणमुप्पाद-व्वय-धुवत्तं वण्णेइ। अग्गेणियं णाम पुव्वं चोद्दसण्हं वत्थूणं १४ बे-सयासीदि-पाहुडाणं २८० छण्णउइ-लक्ख-पदेहि ९६००००० अंगाणमग्गं वण्णेइ १ (अग्रस्य व्दादशांगेषु प्रधानभूतस्य वस्तुन: अयनं

ज्ञानं, अग्रायणं, तत्प्रयोजनमग्रायणीपम्। तच्च सप्तशतसुनयदुर्णयपंचास्तिकायषड्द्रव्यसप्ततत्त्वनवपदार्थादीन् वर्णयति। गो. जी., जी. प्र., टी. ३६६. अग्रंपरिमाणं तस्यायनं गमनं परिच्छेदनमित्यर्थः। तस्मै हितमग्राणीयं, सर्वद्रव्यादिपरिमाणपरि छेदकारीति भावार्थः। नं. सू. पृ. २४१.) वीरियाणुपवांद णाम पुव्वं अट्ठणं वत्थूणं ८ सट्ठि-सय-पाहुडाणं १६०सत्तरि-लक्ख-पदेहि ७०,००००० अप्प-विरियं पर-विरियं उभय-विरियं खेत्त-विरियं भव-विरियं तव-विरियं वण्णेइ२ (वीर्यस्य जीवादिवस्तुसामर्थ्यस्यानुवदनमनुवर्णनमस्मिन्निति वीर्यानुप्रवादं नाम तृतीय पूर्वम्। तच्च आत्मवीर्य-परवीर्योभयवीर्यक्षेत्रकालवीर्यभाववीर्यतपोवीर्यादिसमस्तद्रव्यगुणपर्यायवीर्याणि वर्णयति। गो. जी. जी. प्र., टी. ३६६.)ं अत्थिणत्थिपवादं णाम पुव्वं अट्ठारसण्हं वत्थूणं १८ सट्ठि-ति-सद-पाहुडाणं ३६० सट्ठि-लक्ख-पदेहि ६०,००००० जीवाजीवाणं अत्थि-णत्थित्तं वण्णेदि३ (अस्ति नास्ति इत्यादिधर्माणां प्रवादः प्ररुपणमस्मिन्निति अस्तिनास्तिप्रवादं नाम चतुर्थ पूर्वम्। गो. जी., जी. प्र., टी. ६६६.) तं जहा-जीवः स्वद्रव्यक्षेत्रकालभावैः स्यादस्ति, परद्रव्य-क्षेत्रकालभावैः स्यान्नास्ति, ताभ्यामक्रमेणादिष्टः स्यादवक्तव्यः, प्रथमव्दितीयधर्माभ्यां क्रमेणादिष्टः स्यादस्ति च नास्ति च, प्रथमतृतीयधर्माभ्यां क्रमेणादिष्टः स्यादस्ति च नास्ति च, प्रथमतृतीयधर्माभ्यां क्रमेणादिष्टः स्यादस्ति चावक्तव्यश्च, व्दितीयतृतीयधर्माभ्यां क्रमेणादिष्टः स्यान्नास्ति चावक्तव्यश्च, प्रथम -

---

और पुद्गल द्रव्यके उत्पाद, व्यय और ध्रौव्यका वर्णन करता है। (अग्र अर्थात् व्दादशांगोंमें प्रधानभूत वस्तुके अयन अर्थात् ज्ञानको अग्रायण कहते हैं, और उसका कथन करना जिसका प्रयोजन हो उसे अग्रायणीयपूर्व कहते हैं।) यह पूर्व चौदह वस्तुगत दोसौ अस्सी प्राभृतोंके छ्यानवे लाख पदों व्दारा अंगोंके अग्र अर्थात् परिमाणका कथन करता है। वीर्यानुप्रवादपूर्व, आठ वस्तुगत एकसौ साठ प्राभृतोंके सत्तर लाख पदों व्दारा आत्मवीर्य, परवीर्य, उभयवीर्य, क्षेत्रवीर्य, भाववीर्य और तपवीर्यका वर्णन करता है। अस्तिनास्तिप्रवादपूर्व अठारह वस्तुगत तीनसौ साठ प्राभृतोंके साठ लाख पदोंव्दारा जीव और अजीवके अस्तित्व और नास्तित्वधर्मका वर्णन करता हैं जैसे जीव, स्वद्रव्य,स्वक्षेत्र, स्वकाल और स्वभावकी अपेक्षा कथंचित् अस्तिरुप है। परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल और परभावकी अपेक्षा कथंचित् नास्तिरुप है। जिस समय वह स्वद्रव्यचतुष्टय और परद्रव्यचतुष्टयव्दारा अक्रमसे अर्थात् युगपत् विवक्षित होता है उस समय स्यादवक्तव्यरुप है। स्वद्रव्यादिरुप प्रथमधर्म और परद्रव्यादिरुप व्दितीयधर्मसे जिस समय क्रमसे विवक्षित होता है उससमय कथचित् अस्ति-नास्तिरुप है। स्यादस्तिरुप प्रथम धर्म और स्यादवक्तव्यरुप तृतीय धर्मसे

जिस समय विवक्षित होता है उस समय कथंचित् अस्ति-अवक्तव्यरुप है। स्यान्नास्तिरुप व्दितीय धर्म और स्यादवक्तव्यरुप तृतीय धर्मसे जिस समय क्रमसे विवक्षित होता है उस समय कथंचित् नास्ति-अवक्तव्यरुप है९ स्यादस्तिरुप प्रथम धर्म, स्यान्नास्तिरुप

व्दितीयतृतीयधर्मै: क्रमेणादिष्ट: स्यादिस्त च नास्ति चावक्तव्यश्च जीव इति। एवमजीवादयोऽपि वक्तव्या:। णाणपवादं णाम पुव्वं बारसण्हं वत्थूणं १२ वि-सद-चालीस-पाहुडाणं २४० एगूण-कोडि-पदेहि ९९९९९९९ पंच णाणाणि तिण्णि अण्णाणाणि वण्णेदि१ (ज्ञानानां प्रवाद: प्ररुपणमस्मिन्निति ज्ञानप्रवादम्। तच्च मतिश्रुतावधिमन:पर्ययकेवलानि पंच सम्यग्ज्ञानानि। कुमतिकुश्रुतविभंगख्यानि त्रीण्यज्ञानानि स्वरुपसंख्याविषयफलानि आश्रित्य तेषां प्रामाण्याप्रामाण्यविभागं च वर्णयति। गो. जी., जी. प्र., टी. ३६६.) दव्वट्ठिय-पज्ज-वट्ठिय-णयं पडुच्च अणादिअणिहण-अणादि-सणिहण-सादिअणिहण- सादिसणिहण-णाणादि २ (मु. सादिसणिहणाणि ।) वण्णेदि-णाणं णाणसरुवं च वण्णेदि ।

सच्चपवादं णाम पुव्वं बारसण्हं वत्थूणं १२ दु-सय-चालीस-पाहुडाणं २४० छहि अहिय-एग-कोडि-पदेही १०००००० वाग्गुप्ति:३ (इत आरभ्य सत्यप्रवादवर्णनान्तं यावत् समग्रपाठोऽविकलरुपेण तत्वार्थराजवार्तिके पृ. ५२ पंक्ति ८ त: आरभ्य २८ तमपंक्तिपर्यन्त: शब्दश उपलभ्यते।) वाक्संस्कारकारणं प्रयोगो व्दादशधा भाषा वक्तारश्च अनेक प्रकारं मृषाभिधानं दशप्रकारश्च सत्यसद्भावो यत्र निरुपितस्तत्सत्यप्रवादम्। व्यलीकनिवृत्तिर्वाचां संयमत्वं वा वाग्गुप्ति:। वाक्सं-कारकारणनि शिर:कण्ठादीन्यष्टौ स्थानानि। वाक्प्रयोग: शुभेतरलक्षण: सुगम:। अभ्याख्यनकलहपैशुन्याबध्दप्रलपर-त्युपधिनकृत्यप्रणतिमोषसम्यग्मिथ्यदर्शनात्मिका भाषा व्दादशधा। अयमस्य कर्तेति अनिष्टकथमनभ्याख्यानम्। कलह: प्रतीत:।

व्दितीय धर्म और स्यादवक्तव्यरुप तृतीय धर्मसे जिससमय क्रमसे विवक्षित होता है उससमय कथंचित् अस्ति-नास्ति-अवक्तव्यरुप जीव है। इसी तरह अजीवादिकका भी कथन करना चाहिये। ज्ञानप्रवादपूर्व बारह वस्तुगत दोसौ चालीस प्राभृतोंके एककम एक करोड पदोंव्दारा पांच ज्ञान तीन अज्ञानोंका वर्णन करता है। तथा द्रव्यार्थिकनय और पर्यायार्थिकनयकी अपेक्षा अनादि-अनन्त, अनादि-सान्त, सादि-अनन्त और सादि-सान्तरुप ज्ञानादि तथा इसी तरह ज्ञान और ज्ञानके स्वरुपका वर्णन करता है। सत्यप्रवादपूर्व बारह वस्तुगत दोसौ चालीस प्राभृतोंके एक करोड छह पदोंव्दारा वचनगुप्ति, वाक्ससंस्कारके कारण, वचनप्रयोग, बारह

प्रकारकी भाषा, अनेक प्रकारके वक्ता, अनेक प्रकारके असत्यवचन और दश प्रकारके सत्यवचन इन सबका वर्णन करता है। असत्य नहीं बोलनेको अथवा वचनसंयम अर्थात मौनके धारण करनेको वचनगुप्ति कहते है। मस्तक, कण्ठ, हृदय, जिह्वाका मूल, दांत, नासिका, तालु और ओठ ये आठ वचनसंस्कारके कारण हैं। शुभ और अशुभ लक्षणरुप वचनप्रयोगका स्वरुप सरल है। अभ्याख्यानवचन, कलहवचन, पैशून्यवचन, अबध्दप्रलापवचन, रतिवचन, अरतिवचन, उपधिवचन, निकृतिवचन अप्रणतिवचन, मोषवचन, सम्यग्दर्शनवचन और मिथ्यादर्शनवचनके भेदसे भाषा बारह प्रकारकी है । यह इसका कर्ता है इस तरह अनिष्ट कथन करनेको अभ्याख्यानभाषा कहते हैं। कलहका

पृष्ठतो दोषाविष्कारणं पैशुन्यम्। धर्मार्थकाममोक्षासम्बध्दा वागबध्दप्रलापः। शब्दादिविषयेषु रत्युत्पादिका रतिवाक्। तेष्वेवारत्युत्पादिकारतिवाक्। यां वाचं श्रुत्वा परिग्रहार्जनरक्षणादिष्वासज्यते सोपधिवाक्। वणिग्व्यवहारे यामवधार्य निकृतिप्रवणः आत्मा भवति स निकृतिवाक्। यां श्रुत्वा तपोविज्ञानाभ्यां१ (‘तपोविज्ञानाधिकेष्वपि’ इति पाठः। त. रा. वा. पृ. ५२.) केष्वपि न प्रणमति साऽप्रणतिवाक्। यां श्रुत्वा स्तेये प्रवर्तते सा मोषवाक्। सम्यग्मार्गस्योपदेष्ट्री२ (मु. सम्यग्मार्गोपदेष्ट्री) सम्यग्दर्शनवाक्। तव्दिपरीता मिथ्यादर्शनवाक्। वक्तारश्चाविष्कृतवक्तृपर्यायाः व्दीन्द्रियादयः। द्रव्यक्षेत्रकालभावाश्रयमनेकप्रकारमनृतम्। दशविधः सत्यसद्भावः नाम-रुप-स्थापना-प्रतीत्य-संवृति-संयोजना-जनपद-देश-भाव-समय-सत्यभेदेन। तत्र सचेतनेतरद्रव्यस्यासत्यप्यर्थे संव्यवहारार्थ संज्ञाकरणं तन्नामसस्यम्, यथेन्द्र इत्यादि। यदर्थासन्निधानेऽपि रुपमात्रेणोच्यते तद्रूपसत्यम्, यथा चित्रपुरुषादिष्वसत्यपि चैतन्योपयोगादावर्थे पुरुष इत्यादि। असत्यप्यर्थे यत्कार्यार्थं स्थापितं द्यूताक्षादिषु तत्

अर्थ स्पष्ट ही है। (परस्पर विरोधके बढानेवाले वचनोंकी कलहवचन कहते है।) पीछेसे दोष प्रगट करनेको पैशून्यवचन कहते हैं। धर्म, अर्थ काम और मोक्षके संबन्धसे रहित वचनोंको अबध्दप्रलापवचन कहते हैं। इन्द्रियोंके शब्दादि विषयोंमे राग उत्पन्न करनेवाले वचनोंको रतिवचन कहते हैं। इन्द्रियोंके शब्दादि विषयोंमें अरतिको उत्पन्न करनेवाले वचनोंको अरतिवचन कहते हैं ‘ जिस वचनको सुनकर परिग्रहके अर्जन और रक्षण करनेंमे आसक्ति उत्पन्न होती है। जिस वचनको अवधारण करके जीव वाणिज्यमें ठगनेरुप प्रवृत्ति करनेमें समर्थ होता हैं उसे निकृतिवचन कहते हैं ‘ जिस वचनको सुनकर तप और ज्ञानसे अधिक गुणवाले पुरषोंमें भी जीव नम्रीभूत नहीं होता है उसे अप्रणतिवचन कहते हैं। जिस वचनको सुनकर चौर्यकर्ममें

प्रवृत्ति होती है उसे मोषवचन कहते हैं । समीचीन मार्गका उपदेश देनेवाले वचनको सम्यग्दर्शनवचन कहते हैं। मिथ्यामार्गका उपदेश देनेवाले वचनको मिथ्यादर्शन वचन कहते हैं । जिनमें वक्तृपर्याय प्रगट हो गई है ऐसे व्दिन्द्रियसे आदि लेकर सभी जीव वक्ता हैं। द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावकी अपेक्षा असत्य अनेक प्रकारका हैं। नामसत्य, रुपसत्य, स्थापनासत्य, प्रतीत्यसत्य, संवृतिसत्य, संजोजनासत्य, जनपदसत्य, देशसत्य, भावसत्य और समयसत्यके भेदसे सत्यवचन दश प्रकारका है।

मूल पदार्थके नहीं रहने पर भी सचेतन और अचेतन द्रव्यके व्यवहारके लिये जो संज्ञा की जाती है उसे नामसत्य कहते हैं। जैसे, ऐश्वर्यादि गुणोंके न होने पर भी किसीका नाम 'इन्द्र' ऐसा रखना नामसत्य है। पदार्थके नहीं होने पर भी रुपकी मुख्यतासे जो वचन कहे जाते हैं उसे रुपसत्य कहते हैं। जैसे, चित्रलिखित पुरुष आदिमें चैतन्य और उपयोगादिकरुप अर्थके नहीं रहने पर भी ' पुरुष ' इत्यादि कहना रुपसत्य है। मूल पदार्थके नहीं

स्थापनासत्यम्। साद्यनादीन् भावान्१ (मु. साद्यनादीनौपशमिकादीन् भावान्।) प्रतीत्य यव्दचस्तत्प्रतीत्यसत्यम्। यल्लोके संवृत्याश्रितं वचस्तत्संवृतिसत्यम्, यथा पृथिव्याद्यनेकारणत्वेऽपि सति पङ्के जातं पङ्कजमित्यादि। धूपचूर्णवासा-नुलेपनप्रघर्षादिषु पद्मकरहंससर्वतोभद्रकौञ्चव्यूहादिषु इतरेतरद्रव्याणां२ ('वा सचेतनेतर 'इति पाठः। त. रा. वा. पृ. ५२.) यथाविभागविधिसन्निवेशाविर्भावकं यव्दचस्तत्संयोजनासत्यम्। व्दात्रिंशज्जनपदेष्वार्यानार्यभेदेषु धर्मार्थकाममोक्षाणां प्रापकं यव्दचस्तद्देशसत्यम्ं ग्रामनगरराजगणपाखण्डजातिकुलादिधर्माणां व्यपदेष्टृ यव्दचस्तद्देशसत्यम्। छद्मस्थज्ञानस्य द्रव्ययाथात्म्यादर्शनेऽपि संयतस्य संयतासंयतस्य वा स्वगुणपरिपालनार्थ प्रासुकमिदमप्रासुकमिदमित्यादि यव्दचस्त-द्भावसत्यम् । प्रतिनियतषट्तयद्रव्यपर्यायाणामागमगम्यानां याथात्म्याविष्कारणं यव्दचस्तस्यमयसत्यम् ।

आदपवादं सोलसण्हं वत्थूणं १६ वीसुत्तर-ति-सय-पाहुडाणं ३२० छव्वीस-कोडि-पदेही २६०००००० आदं वण्णेदि वेदे त्ति वा भोत्ते त्ति वा बुध्दे त्ति वा इच्चादि-सरुवेण। उक्तं च ---

जीवो कत्ता य वत्ता य पाणी भोत्ता य पोग्गलो ।
वेदो विण्हू सयंभू य सरीरी तह माणवो ।।८१।।

रहने पर भी कार्यके लिये जो द्यूतसंबन्धी अक्ष (पांसा) आदिमें स्थापना की जाती है उसे स्थापनासत्यसत्य कहते हैं। सादि और अनादि भावोंकी अपेक्षा जो वचन बोला जाता है उसे प्रतीत्यसत्य कहते हैं। लोकमें जो वचन संवृति अर्थात् कल्पनाके आश्रित बोले जाते हैं उन्हे संवृतिसत्य कहते हैं। जैस, पृथिवी आदि अनेक कारणोंके कहने पर भी जो पंक अर्थात् कीचडमें उत्पन्न होता है उसे पंकज कहते हैं इत्यादि। धूपके सुगन्धी चूर्णके अनुलेपन और प्रघर्षणके समय, अथवा पद्म, मकर, हंस, सर्वतोभद्र और क्रौंच आदिरुप व्यूहरचानांके समय सचेतन अथवा अचेतन द्रव्योंके विभागानुसार विधिपूर्वक रचनाविशेषके प्रकाशक जो वचन हैं उन्हें संयोजनासत्य कहते हैं। आर्य और अनार्यके भेदसे बत्तीस देशोंमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके प्राप्त करानेवाले वचनको जनपदसत्य कहते हैं। ग्राम, नगर, राजा, गण, पाखण्ड, जाति और कुल आदिके धर्मोंके उपदेश करनेवाले जो वचन हैं उन्हें देशसत्य कहते हैं। छद्मस्थोंका ज्ञान यद्यपि द्रव्यकी यथार्थताका निश्चय नहीं कर सकता हैं तो भी अपने गुण अर्थात् धर्मके पालन करेनेके लिये यह प्रासुक है, यह अप्रासुक है इत्यादि रुपसे जो सयंत और श्रावकके वचन हैं उन्हें भावसत्य कहते हैं। आगमगम्य प्रतिनियत छह प्रकारकी द्रव्य ओर उनकी पर्यायोंकी यथार्थताके प्रगट करनेवाले जो वचन हैं उन्हें समयसत्य कहते हैं।

आत्मप्रवादपूर्व सोलह वस्तुगत तीनसौ वीस प्राभृतोंके छव्वीस करोड पदोंव्दारा जीव वेत्ता हैं, विष्णू है, भोक्ता है, बुध्द है, इत्यादि रुपसे आत्माका वर्णन करता है। कहा भी है -

---

सत्ता जंतू य माणी य माई जोगी य संकडो ।

असंकडो १ ('वेदो' स्थाने 'वेदी' 'संकडो' स्थाने 'संकुडो' 'असंकडो' स्थाने

'असंकुडो' पाठः । गो. जी., जी. प्र., टी. ३६६.) य खेत्तण्हु अंतरप्पा तहेव य २ (गाथाव्दयान्तर्गताः 'च' शब्दाः उक्तानुक्तसमुच्चयार्थाः वेदितव्याः। ततः कारणात् व्यवहाराश्रयेण कर्मनोकर्मरुपमूर्तद्रव्यादिसम्बधेन मूर्तः, निश्चयनयाश्रयेणामूर्तः इत्यादय आत्मधर्माः समुच्चीयन्ते । गो. जी., जी. प्र., टी. ३६६) ।।८२।।

एदेसिमत्थो वुच्चदे। तं जहा-जीवदि जीविस्सदि पुव्वं जीविदो त्ति जीवो३ (जीवति व्यवहारनयेन दशप्राणान् निश्चयनयेन केवलज्ञानदर्शनसम्यक्त्वरुपचित्प्राणांश्च घारयत्ति जीविष्यति जीवितपूर्वश्चेति जीवः। गो. जी., जी. प्र., टी. ३६६.) सुहमसुहं करेदि त्ति कत्ता४ (व्यवहारनयेन शुभाशुभं कर्म, निश्चयेन

चित्पर्यायांश्च करोतीति कर्ता । गो. जी., जी. प्र., टी. ३६६.) सच्चमसच्चं संतमसंतं वददीदि वत्ता५ (व्यवहारनयेन सत्यमसत्यं च वक्तीति वक्ता, निश्चयेनावक्ता ।। गो. जी., जी. प्र. टी. ३६६.) पाणा एयस्स संति त्ति पाणी ६ (नयव्दयोत्कप्राणा: सन्त्ययेतिप्राणि। गो. जी., जी. प्र., टी. ३६६.) अमर-णिर-तिरिय-णारय-भेएण च उव्विहे संसारे कुसलमकुसलं भुजंदि त्ति भोत्ता७ (व्यवहारेण शुभाशुभकर्मफलं, निश्चयेन स्वस्वरुपं च भुंक्ते अनुभवतीति भोक्ता।। गो. जी., जी. प्र. टी. ३६६) छव्विह-संठाण-बहुविह-देहेहि ८ (मु. संठाणं।) पूरदि गलदि त्ति पोग्गलो९ (व्यवहारेण कर्मनोकर्मपुद्गलान् पूरयति गालयति चेति पुद्गल:, निश्चयेनापुद्गल:। गो. जी., जी. प्र., टी. ३६६.) सुख-दुक्खं वेदेदि त्ति वेदो, वेत्ति जानातीति वा वेद:१० (नयव्दयेन लोकालोकगतं त्रिकालगोचरं सर्वं वेत्ति जानातीति वेद:।। गो. जी., जी. प्र. टी. ३६६.) उपात्तदेहं व्याप्नोतीति विष्णु:११ (व्यवहारेण स्वोपात्तदेहं समुध्दाते सर्वलोकं निश्चयेन ज्ञानेन सर्वं वेवेष्टि व्याप्नोतीति विष्णु:। गो. जी., जी. प्र., टी. ३६६.)

जीव कर्ता है, वक्ता है, प्राणी है, भोक्ता है, पुद्गल है, वेद है, विष्णु है, स्वयंभू है, शरीरी है, मानव है, सक्ता है, जन्तु है, मानी है, मायावी है, योगसहित है, संकुट है, असंकुट है, क्षेत्रज्ञ है और अन्तरात्मा है ।। ८१-८२।।

आगे इन्हीं दोनों गाथाओंका अर्थ कहते हैं। वह इस प्रकार है-जीता है, जीवित रहेगा और पहले जीवित था, इसलिये जीव है। शुभ और अशुभ कार्यको करता है, इसलिये कर्ता है। सत्य-असत्य और योग्य-अयोग्य वचन बोलता है, इसलिये वक्ता है। इसके प्राण पाये जाते हैं इसलिये प्राणी है। देव, मनुष्य, तिर्यच और नारकीके भेदसे चार प्रकारके संसारमें पुण्य और पापका भोग करता है, इसलिये भोक्ता है। छह प्रकारके संस्थान और नाना प्रकारके शरीरोंव्दारा पूर्ण करता है और गलाता हैं, इसलिये पुद्गल है। सुख और दुखका वेदन करता

स्वयमेव भूतवानिति स्वयम्भू: १ (यद्यपि व्यवहारेण कर्मवशाद् भवे भवे भवति परिणमति, तथापि निश्चयेन स्वयं स्वस्मिन्नेव ज्ञानदर्शनस्वरुपेणैव भवति परिणमिति इति स्वयम्भू: । गो. जी., जी. प्र., टी. ३६६.) सरीरमेयस्स अत्थि त्ति सरीरी २ (व्यवहारेण औदारिकादिशरीरमस्यास्तीति शरीरी, निश्चयेनाशरीर: । गो. जी., जी. प्र., टी. ३६६) मनु: ज्ञानं:, तत्र भव इति मानव:३ (व्यवहारेण मानवादिपर्यायपरिणतो मानव: उपलक्षणान्नारक: तिर्यङ देवश्च । निश्चयेन मनौ ज्ञाने भव: मानव:। गो. जी., जी. प्र. टी. ३६६) सजण-

संबंध-मित्त-वग्गादिसु संजदि त्ति सत्ता ४ (व्यवहारेण स्वजनमित्रादिपरिग्रहेषु सजतीति सक्ता, निश्चयेनासक्ता।। गो. जी., जी. प्र., टी. ३६६) चउग्गइ-संसारे जायदि जणयदि त्ति जंतू ५ (व्यवहारेण चतुर्गतिसंसारे नानायोनिषु जायत इति जंतु: संसारीत्यर्थ: निश्चययेनान्तु: । गो. जी., जी. प्र., टी. ३६६) माणो एयस्स अत्थि त्ति माणी ६ (व्यवहारेण मानोऽहंकारोऽस्यास्तीति मानी, निश्चयेनामानी । गो. जी., जी. प्र. टी. ३६६) माया अत्थि त्ति मायी ७ (व्यवहारेण माया वंचना अस्यास्तीति मायी निश्चयेनामायी । गो. जी., जी. प्र., टी. ३६६) जोगो अत्थि त्ति जोगी ८ (व्यवहारेण योग: कायवाङमन: कर्मास्यास्तीति योगी, निश्चयेनायोगी । गो. जी., जी. प्र., टी. ३६६) अइसण्ह-देह-पमाणेण संकुडदि त्ति संकुडो ९ (व्यवहारेण सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकसर्वजघन्यशरीरप्रमाणेन संकुटत्ति संकुचितप्रदेशो भवतीति संकुट:, समुध्दाते सर्वलोकं व्याप्नोतीति असंकुट:। निश्चयेन प्रदेशसंहारविसर्पणाभावादनुभय: किंचिदूनचरमशरीरप्रमाण इत्यर्थ: । गो. जी., जी. प्र., टी. ३६६) सव्वं लोगागासं वियापदि त्ति असंकुडो । क्षेत्रं१० (व्यवहारेण सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकसर्वजघन्यशरीरप्रमाणेन संकुटत्ति संकुचितप्रदेशो भवतीति संकुट:, समुध्दाते सर्वलोकं व्याप्नोतीति असंकुट:। निश्चयेन प्रदेशसंहारविसर्पणाभावादनुभय: किंचिदूनचरमशरीरप्रमाण इत्यर्थ: । गो. जी., जी. प्र., टी. ३६६) स्वस्वरुपं जानातीति क्षेत्रज्ञ: ११ (नयव्दयेन क्षेत्रं लोकालोकं स्वस्वरुपं च जानातीति क्षेत्रज्ञ: । गो. जी., जी. प्र., टी. ३६६.) अट्ठ-कम्मब्भंतरो त्ति अंतरप्पा१२ (व्यवहारेण अष्टकर्माभन्तरवर्तिस्वभावत्वात्, निश्चयेन चैतन्याभ्यन्तरवर्तिस्वभावत्वाच्च अन्तरात्मा । गो. जी., जी. प्र. टी. ३६६.)

है, इसलिये वेद है। अथवा जानता है, इसलिये वेद है। प्राप्त हुए शरीरको व्याप्त करता है, इसलिये विष्णु है। स्वत: ही उत्पन्न हुआ है, इसलिये स्वयम्भू है । संसार अवस्थामें इसके शरीर पाया जाता है, इसलिये शरीरी है। मनु ज्ञानको कहते हैं। उसमें यह उत्पन्न हुआ है, इसलिये मानव है । स्वजनसंबधी मित्रवर्ग आदिमें आसक्त रहता है, इसलिये सक्ता है। चार गतिरुप संसारमे उत्पन्न होता है, और दूसरों को उत्पन्न करता है इसलिये जन्तु है। इसके मानकषाय पाई जाती है, इसलिये मानी है। इसके मायाकषाय पाई जाती है, इसलिये मायी है। इसके तीन योग होते हैं, इसलिये योगी है। अतिसूक्ष्म देह मिलनेसे संकुचित होता है इसलिये संकुट है॑ संपूर्ण लोकाकाशको व्याप्त करता है, इसलिये असंकुट है। क्षेत्र अर्थात् अपने स्वरुपको जानता है, इसलिये क्षेत्रज्ञ है। आठ कर्मोंके भीतर रहता है इसलिये अन्तरात्मा है।

कम्मपवादं णाम पुव्वं वीसण्हं वत्थूणं २० चत्तारि-सय-पाहुडाणं ४०० एग-कोडि-असीदि-लक्ख-पदेही १८००००० अट्ठविहं कम्मं वण्णेदि१ (कर्मण: प्रवाद: प्ररुपणमस्मिन्निति कर्मप्रवादष्टमं पूर्वं। तच्च मूलोतरोतरप्रकृतिभेदभिन्नं बहुविकल्पबंधोदयोदीरणसत्वाद्यवस्थं ज्ञानावरणादिकर्मस्वरुपं समवधानेर्यापथतपस्याधाकर्मादि वर्णयति। गो. जी., जी. प्र., टी. ३६६.) पच्चक्खाण-णामधेयं तीसण्हं वत्थूणं ३० छस्सय-पाहुडाणं ६०० चउरासीदि-लक्ख-पदेहि ८४००००० दव्व-भाव-परिमियापरिमिय-पच्चक्खाणं उववासविहिं पंच समिदीओ तिण्णि गुत्तीओ च परुवेदि२ (प्रत्याख्यायते निषिध्यते सावद्यमस्मिन्ननेनेति वा प्रत्याख्यानं नवमं पूर्वम्। तच्च नामस्थापना द्रव्यक्षेत्रकालभावानाश्रित्य पुरुषसंहननबलाद्यनुसारेण परिमितकाल अपरिमितकाल वा प्रत्याख्यानं सावद्यवस्तुनिवृतिं उपवासविधिं तद्भावनांगं पंचसमितित्रिगुप्त्यादिकं च वर्णयति। गो. जी., जी. प्र. टी. ३६६.) विज्जाणुवादं णाम पुव्वं पण्हारसण्हं वत्थूणं १५ तिण्णि-सय-पाहुडाणं ३०० एग-कोडि-दस-लक्ख-पदेहि ११०००००० ३ (यया विद्ययांगुष्टे देवतावतार: क्रियते सा अंगुष्ठप्रसेनी विद्योच्यते। अभि. रा. को. (अंगुट्ठपसेणी)) अंगुष्ठप्रसेनादीनां अल्पविद्यानां सप्तशतानि रोहिण्यादीनां महाविद्यानां पञ्चशतानि अन्तरिक्षभौमाङ्ग स्वरस्वप्नलक्षणव्यञ्जनछिन्नान्यष्टौ महानिमित्तानि च कथयति४ (विद्यानां अनुवाद: अनुक्रमेण वर्णनं यस्मिन् तद्विद्यानुवादं दशमं पूर्वम्। गो. जी., जी. प्र., टी. ३६६.) कल्लाण५ (कल्याणानां वाद: प्ररुपणमस्मिन्निति कल्याणवादमेंकादशं पूर्वम्। तच्च तीर्थकरचक्रधरबलदेव-वासुदेवप्रतिवासुदेवादीनां गर्भावतरणकल्याणादिमहोत्सवान् तत्कारणतीर्थरकत्वादिपुण्यविशेषहेतुषोडशभावना-तपोविशेषाद्यनुष्ठानानि चन्द्रसूर्यग्रहनक्षत्रचारग्रहणशकुनादिफलादि च वर्णयति। गो. जी., जी. प्र. टी. ३६६. एकादशमवन्ध्यं, वन्ध्यं नाम निष्फलं न विद्यते वन्ध्यं यत्र तदवन्ध्यं, किमुक्तं भवति? यत्र सर्वेऽपि ज्ञानतप: संयमादय: शुभफला सर्वे च प्रमादयोऽशुभफला वर्ण्यन्ते तदवन्ध्यं नाम, तस्य पदपरिमाणं षड्विंशति: पदकोटय:। नं. सू. पृ. २४१.) - णामधेयं णाम पुव्वं दसण्हं वत्थूणं १० वि-सद-पाहुडाणं २०० छव्वीस-कोडि-पदेहि २६०००००० रविशशिनक्षत्रतारागणानां चारोपपादगतिविपर्ययफलानि शकुन व्याहृतमर्हब्दलदेववासुदेवचक्रधरादीनां गर्भावतरणादिमहाकल्याणानि च कथयति

कर्मप्रवादपूर्व वीस वस्तुगत चारसौ प्राभृतोंके एक करोड अस्सी लाख पदोंव्दारा आठ प्रकारके कर्मोंका वर्णन करता है। प्रत्याख्यानपूर्व तीस वस्तुगत छहसौ प्राभृतोंके चौरासी लाख पदोंव्दारा द्रव्य, भाव आदिकी अपेक्षा परिमितकालरुप और अपरिमितकालरुप प्रत्याख्यान, उपवासविधि, पांच समिती और तीन

गुप्तियोंका वर्णन करता है। विद्यानुवादपूर्व पन्द्रह वस्तुगत तीनसौ प्राभृतोंकेएक करोड दश लाख पदोंव्दारा अंगुष्ठप्रसेना आदि सातसौ अल्प विद्याओंका, रोहिणी आदि पांचसौ महाविद्याओंका, और अन्तरिक्ष, भौम, अंग, स्वर, स्वप्न, लक्षण, व्यंजन, चिन्ह इन आठ महानिमित्तोंका वर्णन करता है। कल्याणवादपूर्व दश वस्तुगत दोसौ प्राभृतोंके छव्वीस करोड पदोंव्दारा सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र और तारागणोंके चारक्षेत्र, उपपादस्थान, गति,

---

पाणावायं णाम पुव्वं दसण्हं वत्थूणं१ १० वि-सद-पाहुडाणं २०० तेरस-कोडि-पदेहि १३०००००० कायचिकित्साद्यष्टाङ्गमायुर्वेदं भूतिकर्म२ जाङगुलिप्रक्रमं प्राणापानविभागं च विस्तरेण कथयति (किरियाविसालं णाम पुव्वं दसण्हं वत्थूणं १० विसद- पाहुडाणं २०० णव-कोडि-पदहि ९००००००० लेखादिका: द्वासप्ततिकला: स्त्रैणाँश्चतु:षष्टिगुणान् शिल्पानि काव्यगुणदोषक्रियां छन्दोविचितिक्रियां च कथयति४ (लोकबिंदुसारं णाम पुव्वं दसण्हं वत्थूणं १० विसद-पाहुडाणं २०० बारह५-कोडि-पण्णास-लक्ख-पदेहि १२५०००००० अष्टौ व्यवहारन् चत्वारि बीजानि मोक्षगमन-क्रिया: मोक्षसुखं च कथयति६ (सयल-वत्थु-समासो पंचाणउदि-सदं १९५ सयल-पाहुड-समासो तिण्णि-सहस्सा णवय-सया ३९०० (

वक्रगति तथा उनकेफलोंका, पक्षीकेशब्दोंका और अरिहंत अर्थात तीर्थकर, बलदेव, वासुदेव और चक्रवर्ती आदिकेगर्भावतार आदि महाकल्याणकोंका वर्णन करता है (प्राणावायपूर्व दश वस्तुगत दोसौ प्राभृतोंकेतेरह करोड पदोंद्वारा शरीरचिकित्सा आदि अष्टांग आयुर्वेद, भूतिकर्म, अर्थात् शरीर आदिकी रक्षाके लिये किये गये भस्मलेपन सूत्रबंधनादि कर्म, जांगुलिप्रक्रम, (विषविद्या) और प्राणायामकेभेंद-प्रभेदोंका विस्तारसे वर्णन करता है (क्रियाविशालपूर्व दश वस्तुगत दोसौ प्राभृतोंके नौ करोड पदोंद्वारा लेखनकला आदि बहत्तर कलाओंका, स्त्रीसंबन्धी चौसठ गुणोंका, शिल्पकलाका काव्यसंबन्धी गुण-दोषविधिका और छन्दनिर्माणकलाका वर्णन करता है (लोकबिन्दुसारपूर्व दश वस्तुगत दोसौ प्राभृतोंकेबारह करोड पचास लाख पदोंद्वारा आठ प्रकारके व्यवहारोंका, चार प्रकारके बीजोंका, मोक्षको ले जानेवाली क्रियाका और मोक्षसुखका वर्णन करता है (इन चौदह पूर्वोमें संपूर्ण वस्तुओंका जोड एकसौ पचासनवे है और संपूर्ण प्राभृतोंका जोड तीन हजार नौसौ है (

१.मु. वत्थूहं (२. शरीरभाण्डकरक्षार्थं भस्मसुत्रादिना यत्परिवेष्टनकरणं तद् भूतिकर्म (उक्तं च `भूईए मट्टियाइ व सूत्तेण व होइ भूइकम्मं तु (वसहीसरीरभंडयरक्खा अभिओगमाईआ (प्र . सा. पू. पृ. १८१.

३. प्राणानां आवाद: प्ररुपणमस्मिन्निति प्राणावादं द्वादशं पूर्वम् (तच्च कायचिकित्साद्यष्टांगमायुर्वेदं भूतिकर्म जांगुलिकप्रक्रमं इलापिंगलासुषुम्नादिबहुप्रकारप्राणापानविभागं दशप्राणानां उपकारकापकारकद्रव्याणि गत्याद्यनुसारेण वर्णयति (गो.जी., जी. प्र., टी. ३६६.

४. क्रियादिभि: नृत्यादिभि: विशाल विस्तीर्ण शोभमानं वा क्रियाविशालं त्रयोदशं पूर्वम् (तच्च संगीतशास्त्रछंदोलंक ारादिद्वासप्ततिकला: चतु:षष्टिस्त्रीगुणान् शिल्पादिविज्ञानानि चतुरशीतिगर्भाधानादिका: अष्टोत्तरशतं सम्यग्दर्शनादिका: पंचविंशतिं देववंदनादिका: नित्यनैमितिका: क्रियाश्च वर्णयति (

गो. जी., जी. प्र., टी. ३६७. ५. मु. पाहुडाणं बारह.

६. त्रिलोकबिन्दुसारं इति पाठ: (त्रिलोकानां बिन्दव: अवयवा: सारं च वर्ण्यन्तेऽस्मिन्निति त्रिलोक-बिन्दुसारम् (तच्च त्रिलोकस्वरुपं षट्त्रिंशत्परिकर्माणि अष्टौ व्यवहारान् चत्वारि बीजानि मोक्षस्वरुपं तद्गमनकारणक्रिया: मोक्षसुखस्वरुपं च वर्णयति ((गो. जी., जी. प्र., टी. ३६३. यत्राष्टौ व्यवहाराश्चत्वारि बीजानि परिकर्मराशिक्रियाविभागश्च सर्वश्रुतसंपदुपदिष्टा तत्खलु लोकबिन्दुसारम् (त. रा. वा. पृ. ५३.

एत्थ किमुप्पायपुव्वादो, किमग्गेणियादो? एवं पुच्छा सव्वेसिं (णो उप्पाय-पुव्वादो, एवं वारणा सव्वेसिं (अग्गेणियादो (तस्स अग्गेणियस्स पंचविहो उवक्कमो-आणुपुव्वी णामं पमाणं वत्तव्वदा अत्थाहियारो चेदि (अणुपुव्वी तिविहा-पुव्वाणु-पुव्वी पच्छाणुपुव्वी जत्थाणुपुव्वी चेदि (एत्थ पुव्वाणुपुव्वीए गणिज्जमाणे विदियादो, पच्छाणुपुव्वीए गणिज्जमाणे तेरसमादो, जत्थतत्थाणुपुव्वीए गणिज्जमाणे अग्गेणियादो (अंगाणमग्ग-पदं वण्णेदि त्ति अग्गेणियं त्ति१ गुणणामं (अख्खर-पद-संघाद-पडिवत्ति-अणियोगद्दारेहि संखेज्जमत्थदो अणंतं (वत्तव्वदा ससमयवत्तव्वदा (

अत्थाधियारो चोद्दसविहो(तं जहा-पुव्वंते अवरंते धुवे अध्दुवे चयणलध्दी अध्दुवमं पणिधिकप्पे अट्ठे भोम्मावयादीए सव्वट्ठे कप्पणिज्जाणे तीदे अणागयकाले सिज्झए बुज्झए२ त्ति चोद्दस वत्थूणि३ (एत्थ किं पुव्वंतादो, किंअवरंतादो? एवं पुच्छा सव्वेसिं कायव्वा (णो पुव्वंतादो णो अवरंतादो, एवं वारणा सव्वेसिं

इस जीवस्थान शास्त्रमें क्या उत्पादपूर्वसे प्रयोजन है, क्या अग्रायणीयपूर्वसे प्रयोजन है? इस तरह सबके विषयमें पृच्छा करनी चाहिये (यहां पर न तो उत्पादपूर्वसे प्रयोजन है और न दूसरे पूर्वोंसे प्रयोजन है इस तरह सबका निषेध करके यहां पर अग्रायणीयपूर्वसे प्रयोजन है, इस तरहका उत्तर देना चाहिये (

उस अग्रायणीयपूर्वके पांच उपक्रम है-आनुपूर्वी, नाम, प्रमाण, वक्तव्यता और अर्थाधिकार (पूर्वानुपूर्वी पश्चादानुपूर्वी, और यथातथानुपूर्वीके भेदसे आनुपूर्वी तीन प्रकारकी है (यहां पर पूर्वानुपूर्वीसे गिनती करने पर दूसरेसे, पश्चादानुपूर्वीसे गिनती करने पर तेरहवेंसे और यथातथानुपूर्वीसे गिनती करने पर अग्रायणीयपूर्वसे प्रयोजन है (अंगोंके अग्र अर्थात् प्रधानभूत पदार्थोंका वर्णन करनेवाला होनेके कारण ' अग्रायणीय ' यह गौण्यनाम है (अक्षर, पद, संघात, प्रतिपत्ति और अनुयोगरुप द्वारोंकी अपेक्षा संख्यात और अर्थकी अपेक्षा अनन्तरुप है (इसमें स्वसमयका ही कथन किया गया है, इसलिये स्वसमयवक्तव्यता है (

अग्रायणीयपूर्वके अर्थाधिकार चौदह प्रकारके है (वे इस प्रकार हैं, पूर्वान्त, अपरान्त ध्रुव, अध्रुव, चयनलब्धि, अर्धोपम, प्रणधिकल्प, अर्थ, भौम, व्रतादिक, सर्वार्थ, कल्पनिर्याण, अतीतकालमें सिध्द और बुध्द, अनागतकालमें सिध्द और बुध्द (इनमेंसे यहां पर क्या पूर्वान्तसे प्रयोजन है, क्या अपरान्तसे प्रयोजन है? इस तरह सबके विषयमें पृच्छा करनी चाहिये। यहां पर पूर्वान्तसे प्रयोजन नहीं, अपरान्तसे प्रयोजन नहीं, इत्यादि रुपसे सबका निषेध कर देना चाहिये। किन्तु चयनलब्धिसे यहां पर प्रयोजन है इस प्रकार उत्तर देना चाहिये। चयनलब्धिका

---

१. मु.अग्गेणियं गुणणामं । २. मु. बज्झए।

३. पूर्वान्तं ह्यपरान्तं ध्रुवमधुवच्यवनलब्धिनामानि ं अधुवं सप्रणिधिं चाप्यर्थ भौमावयाद्यं (?) च।। सर्वार्थकल्पनीयं ज्ञानमतीतं त्वनागतं कालम् । सिध्दिमुपाध्यं च तथा चतुर्दश वस्तूनि व्दितीयस्य ।। द.भ.पृ.८-९.

कायव्वा। चयणलध्दीदो । तस्स उवक्कमो पंचविहो। आणुपुव्वी णामं पमाणं वत्तव्वदा अत्थाहियारो चेदि । तत्थ आणुपुव्वी तिविहा ं पुव्वाणुपुव्वी पच्छाणुपुव्वी जत्थतत्थाणुपुव्वी चेदि। एत्थ पुव्वाणुपुव्वीए गणिज्जमाणे पंचमादो, पच्छाणुपुव्वीए गणिज्जमाणे दसमादो, जत्थतत्थाणुपुव्वीए गणिज्जमाणे चयणलध्दीदो । णामं चयण-विहिं लध्दि विहिं च वण्णेदि तेण चयणलध्दि त्ति गुणणामं । पमाणमक्खर-पद-संघाद-पडिवत्ति-अणियोगद्दारेहि संखेज्जमत्थदो अणंत। वत्तव्वदा ससमयवत्तव्वदा । अत्थाधियारो वीसदिविहो । एत्थ किं

पढम-पाहुडादो णो विदिय-पाहुडादो, एवं वारणा सव्वेसिं णेयव्वा । चउत्थ-पाहुडादो । तस्स उवक्कमो पंचविहो । आणुपुव्वी णामं पमाणं वत्तव्वदा अत्थाहियारो चेदि। तत्थ आणुपुव्वी तिविहा । पुव्वाणुपुव्वी पच्छाणुपुव्वी जत्थतत्थाणुपुव्वी चेदि। पुव्वाणुपुव्वीए गणिज्जमाणे चउत्थादो, पच्छाणुपुव्वीए गणिज्जमाणे सत्तारसमादो, जत्थतत्थाणुपुव्वीए गणिज्जमाणे कम्म-पयडिपाहुडादो । णामं कम्माणं पयडि-सरुवं वण्णेदि तेण कम्मपयडिपाहुडे त्ति

उपक्रम पांच प्रकारका है- आनुपूर्वी, नाम, प्रमाण, वक्तव्यता और अर्थाधिकार। पूर्वानुपूर्वी, पश्चादानुपूर्वी और यथातथानुपूर्वीके भेदसे आनुपूर्वी तीन प्रकारकी है । उन तीनोंमेंसे, यहां पर पूर्वानुपूर्वीसे गिनती करने पर पांचवे अर्थाधिकारसे, पश्चादानुपूर्वीसे गिनती करने पर दशवें अर्थाधिकारसे और यथातथानुपूर्वीसे गिनती करने पर चयनलब्धि नामके अर्थाधिकारसे प्रयोजन है । यह अर्थाधिकार चयनविधि और लब्धिविधिका वर्णन करता है, इसलिये चयनब्धि यह गौण्यनाम है । अक्षर, पद,संघात, प्रतिपत्ति और अनुयोगरुप द्वारोंकी अपेक्षा संख्यात तथा अर्थकी अपेक्षा अनन्तप्रमाण है । स्वसमयका कथन करनेवाला होनेके कारण यहां पर स्वसमयवक्तव्यता है । चयनलब्धिके अर्थाधिकार वीस प्रकारके है । उनमेंसे यहां क्या प्रथम प्राभृतसे प्रयोजन है? इस तरह सबके विषयमें पृच्छा करनी चाहिये ं यहां पर प्रथम प्राभृतसे प्रयोजन नहीं है, क्या दुसरे प्राभृतसे प्रयेाजन नहीं है, इस प्रकार सबका निषेध कर देना चाहिये ं किन्तु यहां पर चौथे प्राभृतसे प्रयोजन है ऐसा उत्तर देना चाहिये।

उसका उपक्रम पांच प्रकारका है-आनुपूर्वी, नाम, प्रमाण, वक्तव्यता और अर्थाधिकार। उनमेंसे, पूर्वानपूर्वी, पश्चादानुपूर्वी, पश्चादानुर्वी और यथातथानुपूर्वीके भेदसे आनुपूर्वी तीन प्रकारकी है। यहां पर पूर्वानुपूर्वीसे गिनती करने पर चौथे प्राभृतसे, पश्चादानुपूर्वी गिनती करने पर सत्रहवें प्राभृतसे और यथातथानुपूर्वीसे गिनती करने पर कर्मप्रकृतिप्राभृतसे प्रयोजन है। यह कर्मोकी प्रकृतियोंके स्वरुपका वर्णन करता है, इसलिये कर्मप्रकृतिप्राभृत यह गौण्यनाम है। इसका 'वेदनाकृत्स्नप्राभृत' यह दूसरा नाम भी है। कर्मोके उदयको वेदना कहते हैं। उसका यह

गुणणामं । वेयणकसिणपाहुडे त्ति वि तस्स विदियं णाममत्थि। वेयणा कम्माणमुदयो, तं कसिणं निरवसेसं वण्णेदि, अदो वेयणकसिण-पाहुडमिदि एदमवि गुणणाममेव। पमाणमक्खर-पय-संघाय-पडिवत्ति-अणियोगद्दारेहि संखेज्जमत्थदो अणंतं । वत्तव्वं ससमयो। अत्थाहियारो चउवीसदिविहा। तं जहा-कदी

वेदणाए फासे कम्मे पयडीसु बंधणे णिबंधणे पक्कमे उवक्कमे उदए मोक्खे संकमे लेस्सा लेस्सायम्मे लेस्सापरिणामे सादमासादे दीहे रहस्से भवधारणीए पोग्गलत्ता णिधत्तमणिधत्तं णिकाचिदमणिकाचिदं कम्मट्ठिदी पच्छिमक्खंधे१ (पंचमवस्तुचतुर्थप्राभृत्कस्यानुयोगनामानि ॑ कृतिवेदने तथैव स्पर्शन्कर्म प्रकृतिमेव ॑ बंधननिबंधन्प्रक्रमानुपक्रममथा भ्युद्यमोक्षौ ॑ संक्रमलेश्ये च तथा लेश्यायाः कर्मपरिणामौ ॑ सातमसातं दीर्घ ऱ्हस्वं भवधारणीयसंज्ञं च ॑ पुरुपुद्अगलात्मनाम च निधत्तमभिनौमि ॑ सनिकाचितमनिकाचितमथ कर्मस्थितिक-पश्चिमस्कंधौ ॑ अल्पबहुत्वं च यजे तद्अद्वाराणां चतुर्विंशम् ॑ द.. भ. पृ. ९) त्ति। अप्पाबहुगं चं सव्वत्थ, जेण चउवीसण्हमणियोगद्दाराणं साहारणो तेण पुह अहियारो ण होदि त्ति। एत्थ किं कदीदो, किं वेयणादो? एवं पुच्छा सव्वत्थ कायव्वा। णो कदीदो, णो वेयणादो, एवं वारणा सव्वेसिं णेयव्वा। बंधणादो। तस्स उवक्कमो पंचविहो-आणुपुव्वी णामं पमाणं वत्तव्वदा अत्थाहियारो चेदि। तत्थ आणुपुव्वी तिविहा-पुव्वाणुपुव्वी पच्छाणुपुव्वी जत्थतत्थाणुपुव्वी चेदि । तत्थ पुव्वाणुपुव्वीए गणिज्जमाणे छट्ठादो,

----

निरवशेषरुपसे वर्णन करता है, इसलिये वेदनाकृत्स्नप्राभृत यह भी गौण्यनाम ही है। यह अक्षर, पद, संघात, प्रतिपत्ति और अनुयोगरुप द्वारोंकी अपेक्षा संख्यातप्रमाण और अर्थकी अपेक्षा अनन्तप्रमाण है। स्वसमयका ही कथन करनेवाला होनेके कारण इसमें स्वसमयवक्तव्यता है।

कर्मप्रकृतिप्राभृतके अर्थाधिकार चौवीस प्रकारके हैं, वे इस प्रकार हैं- कृति, वेदना, स्पर्श, कर्म, प्रकृति, बन्धन, निबन्धन, प्रक्रम, उपक्रम, उदय, मोक्ष, संक्रम, लेश्या, लेश्याकर्म, लेश्यापरिणाम, सातअसात, दीर्घ ऱ्हस्व, भवधारणीय, पुद्गलत्व, निधत्त-अनिधत्त, निकाचित्त, अनिकाचित, कर्मस्थिति और पश्चिमस्कंध। इन सब अधिकारोंमें अल्पबहुत्व लगा लेना चाहिये, क्योंकि, चौवीस ही अधिकारोंमें अल्पबहुत्व साधारण अर्थात् समानरुपसे है, इसलिये अल्पबहुत्वनामका पृथक्अधिकार नहीं है।

यहां पर क्या कृतिसे प्रयोजन है, क्या वेदनासे प्रयोजन है? इस तरह सब अधिकारोंकें विषयमें पृच्छा करनी चाहिये। यहां पर न तो कृतिसे प्रयोजन है, न वेदनासेही प्रयोजन है, इस तरह सबका निषेध कर देना चाहिये। किंतु बन्धन अधिकारसे प्रयोजन है, इस तरह उत्तर देना चाहिये। उस बन्धन नामके अधिकारका उपक्रम पांच प्रकारका है-आनुपूर्वी, नाम, प्रमाण, वक्तव्यता और अर्थाधिकार। उनमेंसें, पूर्वानुपूर्वी, पश्चादानपूर्वी और यथातथानुपूर्वीके भेदसे आनुपूर्वी तीन प्रकारकी है। उन तीनोंमेंसे, पूर्वानुपूर्वीसे गिननेपर छटे अधिकारसे,

----

पच्छाणुपुव्वीए गणिज्जमाणे एगूणवीसदिमादो, जत्थतत्थाणुपुव्वीए गणिज्जमाणे बंधणादो ँ णामं बंध-वण्णणादो त्ति गुणणामं ँ पमाणमक्खर-पय-संघाद-पडिवत्ति-अणियोगद्दारेहि संखेज्जमत्थदो अणंतं ँ वत्तव्वदा ससमयवत्तवदा ँ अत्थाधियारो चउव्विहो ँ तं जहा- बंधो बंधगो बंधणिज्जं बंधविधाणं चेदि ँ एत्थ किं बंधादो? एवं पुच्छा सव्वेसं कायव्वा ँ णो बंधादो, णो बंधणिज्जादो ँ बंधगादो बंधविधाणादो च ँ एत्थ बंधगे त्ति अहियारस्स एकारस्स अणियोगद्दाराणि ँ तं- जहा एगजीवेण सामित्तं एगजीवेण कालो एगजीवेण अंतरं णाणाजीवेहि भंगविचयो दव्वपमाणाणुगमो खेत्ताणुगमो पोसणाणुगमो णाणाजीवेहि अंतराणुगमो भागाभागाणुगमो अप्पाबहुगाणुगमो चेदि ँ एत्थ किं एगजीवेण सामित्तादो, एवं पुच्छा सवेसिं ँ णो एगजीवेण सामित्तादो, एवं वारणा सव्वेसिं ँ पंचमादो ँ दव्वपमाणादो दव्वपमाणाणुगमो णिग्गदो ँ

पश्चादानुपूर्वीसे गिननेपर उन्नीसवें अधिकारसे और यथातथानुपूर्वीसे गिननेपर बन्धन नामके अधिकारसे प्रयोजन है । यह बन्धन नामका अधिकार बन्धका वर्णन करता है, इसलिये इसका 'बन्धन' यह गौण्यनाम है। यह अक्षर, पद, संघात, प्रतिपत्ति और अनुयेागरूप व्दारोंकी अपेक्षा संख्यातप्रमाण और अर्थकी अपेक्षा अनन्तप्रमाण है । स्वसमयका वर्णन करनेवाला होनेसे इसमें स्वसमयवक्तव्यता है।

इसके अर्थाधिकार चार प्रकारके हैं। वे इस प्रकार है -बन्ध, बन्धक, बन्धनीय और बन्धविधान। यहांपर क्या बन्धसे प्रयोजन है? इत्यादि रूपसे चारों अधिकारोंके विषयमें पृच्छा करनी चाहिये। यहांपर बन्धसे प्रयोजन नहीं है, न बन्धनीयसे प्रयोजन है, किन्तु बन्धक और बन्धविधानसे यहांपर प्रयोजन है।

इन बन्ध आदि चार अधिकारोंमेसे बन्धक इस अधिकारके ग्यारह अनूयोगव्दार है। वे इस प्रकार हैं- एक जीवकी अपेक्षा स्वामित्वानुगम, एक जीवकी अपेक्षा कालानुगम, एक जीवकी अपेक्षा अन्तरानुगम, नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचयानुगम, द्रव्यप्रमाणानुगम, क्षेत्रानुगम, स्पर्शनानुगम, नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरानुगम, भागाभागानुगम और अल्पबहुत्वानुगम ँ यहां पर क्या एकजीवकी अपेक्षा स्वामित्वानुगमसे प्रयोजन है? इत्यादि रुपसे ग्यारह अनुयोगव्दारोंके विषयमें पृच्छा करनी चाहिये। यहांपर एक जीवकी अपेक्षा स्वामित्वानुगमसे प्रयोजन नहीं है, इत्यादी रुपसे सबका निषेध भी कर देना चाहिये। किन्तु यहां पांचवें द्रव्यप्रमाणानुगमसे प्रयोजन है, इस प्रकार उत्तर देना चाहिये।

इस जीवस्थान शास्त्रमें जो द्रव्यप्रमाणानुगम नामका अधिकार हैं, वह इस बन्धक नामके अधिकारके द्रव्यप्रमाणानुगम नामके पांचवें अधिकारसे निकला है।

बंधविहाणं चउव्विहं। तं जहा-पयडिबंधो ट्ठिदिबंधो अणुभागबंधो पदेसबंधो चेदि। तत्थ जो सो पयडिबंधो सो दुविहो मूलपयडिबंधो उत्तरपयडिबंधो चेदि। तत्थ जो सो मूलपयडिबंधो सो थप्पो। जो सो उत्तरपयडिबंधो सो दुविहा, एगेगुत्तर-पयडिबंधो अव्वोगाढउत्तरपयडिबंधो चेदि। तत्थ जो सो एगेगुत्तरपयडिबंधो तस्स चउवीस अणियोगद्दाराणि णादव्वाणि भवंति। तं जहा, समुक्कित्तणा सव्वबंधोणोसव्वबंधो उक्कस्सबंधो अणुक्कस्सबंधो जहण्णबंधो अजहण्णबंधो सादियबंधो अणादियबंधो धुवबंधो अध्दुवबंधो बंधसामित्तविचयो बंधकालो बंधंतरं बंधसण्णियासो णाणाजीवेहि भंगविचयो भागाभागाणुगमो परिमाणाणुगमो खेत्ताणुगमो पोसणाणुगमो कालाणुगमो अंतराणुगमो भावाणुगमो अप्पाबहुगाणुगमो चेदि। एदेसु समुक्कित्तणादो पयडिसमुक्कित्तणा ट्ठाणसमुक्कित्तणा तिण्णि महादंडया णिग्गया। तेवीसदिमादो भावादो भावो णिग्गदो। जो सो अव्वोगाढुत्तरपयडिबंधो सो दुविहो, भुजगारबंधो पयडिट्ठाणबंधो चेदि। जो सो भुजगारबंधो तस्स अट्ठ अणियोगाद्दाराणि, सो थप्पो। जो सो पयडिट्ठाणबंधो तत्थ इमाणि अट्ठ अणियोगद्दाराणि। तं जहा, संतपरुवणा दव्वपमाणाणुगमो खेत्ताणुगमो पोसणाणुगमो कालाणुगमो अंतराणुगमो भावाणुगमो अप्पाबहुगाणुगमो चेदि। एदेसु अट्ठसु अणियोगद्दारेसु छ अणियोगद्दाराणि णिग्गयाणि।

बन्धविधान चार प्रकारका है। वह इस प्रकार-प्रकृतिबन्ध, स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध और प्रदेशबन्ध। उन चार प्रकारके बन्धमेंसे मूलप्रकृतिबन्ध और उत्तरप्रकृतिबन्धके भेदसे प्रकृतिबन्ध दो प्रकारका है। उनमेंसे, मूलप्रकृतिबन्धका वर्णन स्थगित करके उत्तरप्रकृतिबन्धके भेदोंका वर्णन करते हैं। वह उत्तरप्रकृतिबन्ध दो प्रकारका है-एकैक्कोत्तरप्रकृतिबन्ध और अव्वोगाढ उत्तरप्रकृतिबन्ध । उनमेंसे जो एकैक्कोत्तरप्रकृतिबन्ध है उसके चौवीस अनुंयोगद्वार हैं। वे इस प्रकार है- समुत्कीर्तना, सर्वबन्ध, नोसर्वबन्ध, उत्कृष्टबन्ध, अनुत्कृष्टबन्ध, जघन्यबन्ध, अजघन्यबन्ध, सादिबन्ध अनादिबन्ध, ध्रुवबन्ध, अध्रुवबंन्ध, बन्धस्वामित्वविचय, बन्धकाल, बन्धान्तर, बन्धसन्निकर्ष, नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय, भागाभागानुगम, और अल्पबहुत्वानुगम। इन चौवीस अधिकारोंमे जो समुत्कीर्तना नामका अधिकार है उसमेंसे प्रकृतिसमुत्कीर्तना, स्थानसमुत्कीर्तना और तीन महादण्डक निकले हैं और तेवीसवें भावानुगम निकला है।

जो अव्वोगाढ उत्तरप्रकृतिबन्ध है वह दो प्रकारका है - भृजगारबन्ध और प्रकृतिस्थानबन्ध। उनमेंसे भुजगारबन्धके आठ अनुयोगद्वारोंके वर्णनको स्थगित करके प्रकृतिस्थानबन्धमें जो आठ अनुयोगद्वार हैं उनका वर्णन करते है। वे इस प्रकार है- सत्प्ररूपणा, द्रव्यप्रमाणानुगम, क्षेत्रानुगम, स्पर्शनानुगम,

कालानुगम, अन्तरानुगम, भावानुगम और अल्पबहुत्वानुगम। इन आठ अनुयोगद्वारोंमेंसे छह अनुयोगद्वार निकले हैं। वे इस प्रकार हैं- सत्प्ररुपणा, क्षेत्रपरूपणा, तं जहा-संतपरूवणा खेत्तपरूवणा पोसणपरूवणा कालपरूवणा अंतरपरूवणा अप्पाबहुगपरुवणा चेदि। एदाणि छ पूविल्लाणि दोण्णि एक्कदो मेलिदे जीवट्ठाणस्स अट्ठ अणियोगद्दाराणि हवंति। पयडिट्ठाणबंधे वुत्त-संतादि- छ-अणियोगद्दाराणि चोद्दसण्हं गुणट्ठाणाणं वुत्ताणि । पुणो जीवट्ठाणस्स संतादि - छ अणियोगद्दाराणि चोद्दाराणि चोद्दसण्हं गुणट्ठाणाणं वृत्तणि । कधं तेहिंतो एदाणमवदारोत्ति? ण एस दोसो, एदस्स पयडिट्ठाणस्स बंधया मिच्छाइट्ठि अत्थि एदस्स पयडिट्ठाणस्स बंधया मिच्छाएट्ठी एवदि खेत्ते। एदस्स पयडिट्ठाणस्स बंधएहि मिच्छाइट्ठीहि एवदियं खेत्तं पोसदं । एदस्स पयडिट्ठाणस्स बंधया मिच्छाइट्ठी तं मिच्छत्त-गुणमंछंडंता१ (मु. मछद्दंता) जहण्णेण एत्तियं कालमुक्कस्सेण एत्तियं कालमच्छंति। ताणमंतर-कालो जहण्णुक्कस्सेण एत्तिओ होदि।

स्पर्शनप्ररूपणा, कालप्ररूपणा, अन्तरप्ररूपणा और अल्पबहुत्वप्ररूपणा । ये छह और बन्धक अधिकार के ग्यारह अधिकार है, उनमेंके द्रव्यप्रमाणानुगममेंसे निकला हुआ द्रव्यप्रमाणानुगम तथा एकोत्तरप्रकृतिबन्धके जो चौवीस अधिकार हैं उनमेंके तेवीसवें भावानुगममेंसे निकला हुआ भावप्रमाणानुगम, इस तरह इन सबको एक जगह मिला देने पर जीवस्थानके आठ अनुयोगद्वार हो जाते हैं।

शंका-- प्रकृतिस्थानबन्धमें जो छह अनुयोगद्वार कहे गये है वे प्रकृतिस्थानबन्धसंबन्धी कहे गये हैं। किन्तु जीवस्थानके जो सत्प्ररू पणा आदि छह अनुयोगद्वारा हैं वे गुणस्थानसंबंन्धी कहे गये हैं। ऐसी हालतमें प्रकृतिस्थानबन्धसंबन्धी छह अनुयोगद्वारामेंसे जीवस्थानसंबंन्धी छह अनुयोगद्वारोंका अवतार कैसे हो सकता है?

समाधान - यह कोई दोष नही हैं, क्योंकि, इस प्रकृतिस्थानके बन्धक मिथ्यादृष्टि जीव हैं। मिथ्यादृष्टि जीव इतने क्षेत्रमें इस प्रकृतिस्थानके बन्धक होते हैं। इस प्रकृतिस्थानके बन्धक मिथ्यादृष्टि जीवोंने इतना क्षेत्र स्पर्श किया है । इस प्रकृतिस्थानके बन्धक मिथ्यादृष्टि जीव उस मिथ्यात्व गुणस्थानको नही छोडते हुए जघन्यकी अपेक्षा इतने कालतक और उत्कृष्टकी अपेक्षा इतने कालतक मिथ्यात्व गुणस्थानमें रहते हैं । इस प्रकृतिस्थानके बन्धक मिथ्यादृष्टी जीवोंका जघन्य अन्तरकाल इतना और उत्कृष्ट अन्तरकाल इतना होता है । इसी तरह शेष गुणस्थानोंका कथन करकेफिर उनका अल्पबहुत्व कहा गया है। इसलिये उस प्रकृतिस्थानमें कहे गये छह अनुयोगद्वारोंके साथ जीवस्थानमें कहे गये छह अनुयोगद्वारोंका एकत्व अर्थात समानता विरोधको प्राप्त नहीं होती है।

विशेषार्थ-- प्रकृतिस्थानबन्धमें सदादि छह अनुयोगोंका प्रकृतिस्थानकी अपेक्षा कथन है और इस जीवनस्थानमें प्रकृतिस्थानके बन्धक मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानोंकी अपेक्षा सदादि छह अनुयोगोंका कथन है। इसलिये प्रकृतिस्थानके छह अनुयोगोमेंसे जीवस्थानके छह अनुयोगोंकी उत्पत्ति विरोधको प्राप्त नहीं होती है।

एवं सेसगुणट्ठाणं च भणिऊण पुणो ताणमप्पाबहुगं उत्तं। तेण तेही पयडिट्ठाणम्हि उत्त-छहि अणियोगद्दारेहि सह एगत्तं ण विरू ज्झदे। एत्थतण-दव्वाणियोगस्स वि किं ण गहणं कीरदि त्ति उत्ते, ण, मिच्छाइट्ठी-आदि-गुणट्ठाणेहि विणा एयस्स बंधट्ठाणस्स बन्धया जीवा एत्तिया इदि सामण्णेण वुत्तत्तादो ं बंधगे उत्त दव्वाणियोगस्स गहणं कीरदि, तत्थ बंधगा मिच्छाइट्ठी एत्तिया सासणादिया एत्तिया इदि उत्तत्तादो। कधमजोगि-गुणट्ठाणस्स अबंधगस्स दव्व-संखा परू विज्जदि त्ति, ण एस दोसो, भूदपुव्व-गइमस्सिऊण तस्स भणण-संभवादो । जीवपयडि-संत-बंधमस्सिऊण उत्तमिदि वा । एवं भावस्स वि वत्तव्वं । एवं जीवट्ठाणस्स अट्ठ-अणियोगद्दार-परू वणं कदं।

प्रकृतिस्थान अधिकारमें कहे गये द्रव्यानुयोगका भी ग्रहण इस जीवस्थानमें क्यों नही किया है? अर्थात प्रकृतिस्थान अधिकारके सदादि छह अनुयोगोंमेंसे जिस प्रकार जीवस्थानके सदादि छह अनुयोगद्वारोंकी उत्पत्ति बतलाई है, उसी प्रकार प्रकृतिस्थानाधिकारके द्रव्यानुयोगमेंसे जीवस्थानके द्रव्यानुयोगकी उत्पत्तिका कथन क्यों नहीं किया गया है? इस प्रकारकी शंका करनेपर आचार्य उत्तर देते हैं कि ऐसी शंका करना ठीक नही हैं, क्योंकि, प्रकृतिस्थानके द्रव्यानुयोग अधिकारमें मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानोंकी अपेक्षाके विना इस बन्धस्थानके बन्धक जीव इतने हैं ऐसा केवल सामान्यरुपसे कथन किया गया है ं और बन्धक अधिकारके द्रव्यानुयोग प्रकरणमें इस प्रकृतिस्थानके बन्धक मिथ्यादृष्टि जीव इतने हैं , सासादन सम्यग्दृष्टि जीव इतने हैं ऐसा विशेषरू पसे कथन किया गया है। इसलिये बन्धक अधिकारमें कहे गये द्रव्यानुयोगका ग्रहण इस जीवस्थानमें किया है ं अर्थात बन्धक अधिकारके द्रव्यानुगम प्रकरणसे जीवस्थानका द्रव्यप्रमाणानुगम प्रकरण निकला है।

शंका -- अयोगी गुणस्थानमें कर्मप्रकृतियोंका बन्ध नही होता है, इसलिये उनकी द्रव्यप्रमाणानुगममें द्रव्यसंख्या कैसे कही जावेगी?

समाधान-- यह कोई दोष नही है, क्योंकि, भूतपूर्व न्यायका आश्रय लेकर अयोगी गुणस्थानकी द्रव्यसंख्याका कथन संभव है। अर्थात् जो जीव पहले मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानोमें प्रकृतिस्थानोंके बन्धक थे वे ही अयोगी हैं।

इस प्रकार अयोगी गुणस्थानकी द्रव्यसंख्याका प्रतिपादन किया जा सकता है। अथवा, जीवके सत्वरू प प्रकृतिबन्धका आश्रय लेकर अयोगी गुणस्थानकी द्रव्यसंख्याका प्ररू पण किया गया है।

भावानुगमका कथन भी इसी प्रकार समझ लेना चाहिये।

विशेषार्थ --- जीवस्थानकी भावप्ररू पणा प्रकृतिस्थानके भावानुगममेंसे न निकल कर एकैक्कोत्तरप्रकृतिबन्धके जो चौवीस अधिकार हैं उनके तेवीसवें भावानुगममेंसे निकली है। इसका कारण यह है कि प्रकृतिस्थानके भावानुगममें भावोंका सामान्यरू पसे कथन है और एकैक्कोत्तर-प्रकृतिस्थानके भावानुगममें भावोंका विशेषरू पसे कथन है। इस तरह जीवस्थानकेआठ अनुयोगद्वारोंका निरू पण किया।

तदो ट्ठिदिबंधो दुविहो-मूलपयडिट्ठिदिबंधो उत्तरपयडिट्ठिदिबंधो चेदि । तत्थ जो सो मूलपयडिट्ठिबंधो सो थप्पो । जो सो उत्तरपयडिट्ठिदिबंधो तस्स चउवीस अणियोगद्दाराणि । तं जहा-अद्धाछेदो सव्वबंधो णोसव्वबंधो उक्कस्सबंधो अणुक्कस्सबंधो जहण्णबंधो अजहण्णबंधो सादियबंधो अणादियबंधो धुवबंधो अद्धुवबंधो बंधसामित्तविचयो बंधकालो बंधंतरं बंधसण्णियासो णाणाजीवेहि भंगविचयो भागाभागाणुगमो परिमाणाणुगमो खेत्ताणुगमो पोसणाणुगमो कालाणुगमो अंतराणुगमो भावाणुगमो अप्पाबहुगाणुगमो चेदि। तत्थ अद्धाछेदो दुविहोजहण्णट्ठिदिअध्दाछेदो उक्कस्सट्ठिदिअध्दाछेदो चेदि । जहण्णट्ठिदिअध्दाछेदादों जहण्णट्ठिदी णिग्गदा । उक्कस्सट्ठिदिअध्दाछेदादों उक्कस्सट्ठिदी णिगग्दा। पुणो सुत्तादो सम्मत्तुप्पत्ती णिग्गया । वियाहपण्णत्तीदो गदिरागदी णिगदा । संपहि पुव्वं उत्तापयडिसमुक्कित्तणा१ (मु उत्तपयडि-।) ट्ठाणसमुक्कित्तणा तिण्णि महादंडया एदाणं पंचण्हमुवरि संपहि उत्त२ (मु. पुव्वुत्त।) -जहण्णट्ठिदिअध्दाछेदं उक्क स्सट्ठिदिअद्धाछेदं सम्मत्तुप्पतिं गदिरागदिं च पक्खिते चूलियाए णव अहियारा भवंति । एदं सव्वमवि मणेण अवहारिय 'एत्तो' इदि उत्तं भयवदा पुप्फयंतेण ।

स्थितिबन्ध दो प्रकारका हैं- मूलप्रकृतिस्थितिबन्ध और उत्तरप्रकृतिस्थितिबन्ध। उनमेंसे मूलप्रकृतिस्थितिबन्धका वर्णन स्थगित करके जो उत्तरप्रकृतिस्थितिबन्धके चौवीस अनुयोगद्वार हैं उनका कथन करते हैं। वे इस प्रकार हैं- अर्धच्छेद, सर्वबन्ध, नोसर्वबन्ध, उत्कृष्टबन्ध, अनुत्कृष्टबन्ध, जघन्यबन्ध,

अजघन्यबन्ध, सादिबन्ध, अनादिबन्ध, ध्रुवबन्ध, अध्रुवबन्ध बन्धस्वामित्वविचय, बन्धकाल, बन्धान्तर, बन्धसन्निकर्ष, नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय, भागाभागानुगम, परिमाणानुगम, क्षेत्रानुगम, स्पर्शनानुगम, कालानुगम, अन्तरानुगम, भावानुगम और अल्पबहुत्वानुगम। इनमें अर्धच्छेद दो प्रकारका हैं- जघन्यस्थिति-अर्धच्छेद और उत्कृष्ट-स्थिति-अर्धच्छेद ं इनमें जघन्यस्थिति-अर्धच्छेदसे जघन्यस्थिति निकली है और उत्कृष्टस्थिति अर्धच्छेदसे उत्कृष्टस्थिति निकली है। सूत्रसे सम्यक्त्वोत्पत्ति नामका अधिकार निकला है और व्याख्याप्रज्ञप्तिसे गति आगति नामका अधिकार निकला है।

अब नौ चूलिकाओका उत्पत्तिक्रम बताते हैं, पहले जो एकैक्कोत्तरप्रकृति अधिकारके समुत्कीर्तना नामके प्रथम अधिकारसे प्रकृतिसमुत्कीर्तना स्थानसमुत्कीर्तना और तीन महादण्डकोंके निकलनेका उल्लेख कर आये हैं, उन पाचोंमें अभी कहे गये जघन्यस्थिति-अर्धच्छेद, उत्कृष्टस्थिति-अर्धच्छेद, सम्यक्त्वोत्पत्ति और गति-आगति इन चार अधिकारोंके मिला देने पर चूलिकाके नौ अधिकार हो जाते हैं। इस समस्त कथनको मनमें निश्चय करके भगवान् पुष्पदन्तने 'एत्तो' इत्यादि सूत्र कहा।

'इमेसिं' एतेषाम् । न च प्रत्यक्षनिर्देशोऽनुपपन्नः आगमाहितसंस्कारस्या-चार्यस्यापरोक्षचतुर्दशभावजीवसमासस्य तदविरोधात् । जीवाः समस्यन्ते एष्विति जीवसमासाः१ (कथमियं 'जीवसमास' इति संज्ञा गुणस्थानस्य जाता?) इति चेज्जीवाः समस्यन्ते संक्षिप्यन्ते एष्विति जीवसमासाः। अथवा जीवाः सम्यगासते एष्विति जीवसमासा इत्यत्र प्रकरणसामर्थ्येन गुणस्थानान्येव जीवसमासशब्देनोच्यन्ते । गो. जी., जी. प्र., टी. १०) चतुर्दश च ते जीवसमासाः चतुर्दशजीवसमासा । तेषां चतुर्दशानां जीवसमासानां चतुर्दशगुणस्थानानामित्यर्थः। तेषां मार्गणा गवेषणमन्वेषणमित्यर्थः। मार्गणा एवार्थः प्रयोजनं मार्गणार्थस्तस्य भावो मार्गणार्थता तस्यां मार्गणार्थतायाम्। तस्यामिति त्र। 'इमानि' इत्यनेन भावमार्गणास्थानानि प्रत्यक्षीभूतानि निर्दिश्यन्ते, नार्थमार्गणस्थानानि, तेषां देशकालस्वभावविप्रकृष्टानां प्रत्यक्षतानुपपत्तेः। तानि च मार्गणस्थानानि चतुर्दशैव भवन्ति, मार्गणस्थानसंख्याया न्यूनाधिकभावप्रतिषेधफल एवकारः। किं मार्गणं नाम? चतुर्दश जीवसमासाः सदादिविशिष्टाः मार्ग्यन्तेऽस्मिन्ननेन वेति मार्गणम् । उत्तं च ---

---

'एत्तो' इत्यादि सूत्रमें जों 'इमेसिं' पद आया है उससे जो प्रत्यक्षीभूत पदार्थका निर्देश होता है वह अनुपपन्न नहीं है, क्योंकि, जिनकी आत्मा आगमाभ्याससे संस्कृत है ऐसे आचार्यके भावरू प चौदह

जीवसमास प्रत्यक्षीभूत हैं। अतएव 'इमेसिं' इस पदके प्रयोग करनेमें कोई विरोध नहीं आता है। अनन्तानन्त जीव जिनमें संग्रह किये जाय उन्हें जीवसमास कहते है। वे जीवसमास चौदह हैं। उन चौदह जीवसमासोंसे यहां पर चौदह गुणस्थान विवक्षित हैं। अर्थात् जीवसमासका अर्थ यहां पर गुणस्थान लेना चाहिये । मार्गणा, गवेषणा और अन्वेषण ये तीनों शब्द एकार्थवाची है मार्गणरुप प्रयोजनको मार्गणार्थ कहते है। मार्गणार्थ अर्थात् मार्गणारुप प्रयोजनके भाव अर्थात् विशेषताको मार्गणार्थता कहते हैं ं उस मार्गणारुप प्रयोजन विशेषकी विवक्षा होनेपर, यहां पर इसी अर्थमें तत्थ यह पद आया है। इमानि इस पदसे प्रत्यक्षीभूत भावमार्गणास्थानोंका निर्देश किया है। द्रव्यमार्गणाओंका ग्रहण नहीं किया है, क्योंकि, द्रव्यमार्गणाएँ देश, काल और स्वभावकी अपेक्षा दूरवर्ती हैं। अतएव अल्पज्ञानियोंको उनका प्रत्यक्ष ज्ञान नही हो सकता है। वे मार्गणास्थान चौदह ही है। यहां सूत्रमें जो एवं पद दिया है उसका फल या प्रयोजन मार्गणास्थानकी संख्याके न्यूनाधिकभावका निषेध करना है।

शंका -- मार्गणा किसे कहते हैं?

समाधान -- सत्, संख्या, आदि अनुयोगद्वारोंसे युक्त चौदह जीवसमास जिसमें या जिसके द्वारा खोजे जाते हैं उसे मार्गणा कहते हैं । कहा भी है-

---

जाहि व जासु व जीवा मग्गिज्जंते जहा तहा दिट्ठा ।

ताओ चोद्दस जाणे सुदणाणे मग्गणा होंति१ (प्रा. पं. १, ५६ . गो . जी. १४१. गत्यादिमार्गणा यदा एकजीवस्य नारकत्वादिपर्यायस्वरू पा विवक्षितास्तदा 'याभि:' इतीत्थंभूतलक्षणे तृतीया विभक्ति:। यदा एकद्रव्य प्रति पर्यायाणामधिकरणता विवक्ष्यते तदा 'यासु' इत्यधिकरणे सप्तमी विभक्ति:, विवक्षावशात्कारकप्रवृत्तिरिति न्यायस्य सद्भावात। जी. प्र. टी. श्रुत ज्ञायतेऽनेनेति, श्रुतज्ञानं, वर्णपदवाक्यरू पं द्रव्यश्रुतं गुरू शिष्यप्रशिष्यपरम्परया द्रव्यागमस्य अविच्छिन्नप्रवाहेण प्रवर्तमानत्वात्। तत्र 'यथा दृष्टास्तथा जानीहि'. इति वचनेन शास्त्रकारस्य कालदोषात्प्रमादाद्वा यत्स्खलितं तन्मुक्त्वा परमागमानुसारेण व्याख्यातार: अध्येतारो वाऽविरू द्धमेव वस्तुस्वरू पं गृह्हन्तीति प्रदर्शितमाचार्यै:। मं. प्र. टी.) ।।८३।।

तं जहा ।।३।।

‘ तच्छब्द: पूर्वक्रान्तपरामर्शी ’ इति न्यायात् ‘ तं ’ तत् मार्गणविधानं । ‘जहा’ यथेति यावत् । एवं पृष्टवत: शिष्यस्य सन्देहापोहनार्थमुत्तरसूत्रमाह -

गइ इंदिए काए जोगे वेदे कसाए णाणे संजमे दंसणे लेस्सा भविय सम्मत्त सण्णि आहारए चेदि ।।४।।

गताविन्द्रिये काये योगे वेदे कषाये ज्ञाने संयमे दर्शने लेश्यायां भव्ये सम्यक्त्वे संज्ञिनि आहारे च जीवसमासा: मृग्यन्ते। ‘च’ शब्द: प्रत्येकं परिसमाप्यते समुच्चयार्थ:। ‘इति’ शब्द: समाप्तौ वर्तते। सप्तमीनिर्देश: किमर्थ:? तेषामधि-

---

श्रुतज्ञान अर्थात द्रव्यश्रुतरूप परमागममें जीव पदार्थ जिस प्रकार देखे गये हैं उसी प्रकारसे वे जिन नारकत्वादि पर्यायोंकेद्वारा अथवा जिन नारकत्वादिरूप पर्यायोमें खोजे जाते हैं उन्हें मार्गणा कहते हैं। और वे चौदह होती हैं ऐसा जानो ।।८३।।

वे चौदह मार्गणास्थान जैसे ? ।।३।।

‘तत् शब्द पूर्व प्रकरणमें आये हुए अर्थका परामर्शक होता है’ इस न्यायके अनुसार ‘तत्’ इस शब्दसे मार्गणाओंकेभेदोंका ग्रहण करना चाहिये। ‘जहा’ इस पदका अर्थ जैसे होता है। वे जैसे? इस तरह पूछनेवाले शिष्यकेसन्देहको दूर करनेकेलिये आगेका सूत्र कहते हैं ---

गति इन्द्रिय, काय, योग, वेद, कषाय, ज्ञान, संयम, दर्शन, लेश्या, भव्यत्व, सम्यक्त्व, संज्ञी और आहार ये चौदह मार्गणाएँ हैं और इनमें जीव खोजे जाते हैं ।।४।।

गतिमें, इन्द्रियमें, कायमें, योगमें, वेदमें, कषायमें, ज्ञानमें, संयममें, दर्शनमें,लेश्यामें, भव्यत्वमें, सम्यक्त्वमें, संज्ञीमें और आहारमें जीवसमासोंका अन्वेषण किया जाता है। इस सूत्रमें ‘च’ शब्द समुच्चयार्थक है, इसलिये प्रत्येक पदके साथ उसका संबन्ध कर लेना चाहिये। ‘इति’ शब्द समाप्तिरूप अर्थमें आया है। इससे यह तात्पर्य निकलता है कि मार्गणाएं चौदह ही होती हैं।

करणत्वप्रतिपादनार्थः तृतीयानिर्देशोऽप्यविरू द्धः। स कथं लभ्यते? न, देशामर्शकत्वान्निर्देशस्य। यत्र च गत्यादौ विभक्तिर्न श्रूयते तत्रापि 'आइ-मज्झंत-वण्ण-सर-लोवो' इति लुप्ता विभक्तिरित्यभ्यूह्यम्। अहवा 'लेस्सा-भविय-सम्मत्त-सण्णि-आहारए' चेदि एकपदत्वान्नावयवविभक्तयः श्रूयन्ते।

अथ१ (ननु लोके व्यावहारीकपदार्थस्य विचारे कश्चिन्मृगयितां किंचिन् मृग्यं कापि मार्गणा कश्चिमार्गणोपाय इति चतुष्टयमस्ति ं अत्र लोकोत्तरेऽपि तद् वक्तव्यमिति चेदुच्यते, मृगयिता भव्यवरपुण्डरीकः गुरुः शिष्यो वा ं मृग्याः गुणस्थानादिविशिष्टाः जीवाः, मार्गणा गुरुशिष्ययोर्जीवतत्त्वविचारणा ं मार्गणोपायाः गतीन्द्रियादयः पंच भावविशेषाः करणाधिकरणरुपाः सन्तीति लोकव्यवहारानुसारेण लोकोत्तरव्यवहारोऽपि वर्तते ं गो. जी., मं. प्र., टी. ८४१.) स्याज्जगति चतुर्भिमर्गिणा निष्पद्यमानोपलभ्यते२ (मु. निष्पाद्य-)। तद्यथा, मृगयिता मृग्यं मार्गणं मार्गणोपाय इति। नात्र ते सन्ति, ततो मार्गणमनुपपन्नमिति । नैष दोषः , तेषामप्यत्रोपलम्भात्। तद्यथा, मृगयिता भव्यपुण्डरीकः तत्वार्थश्रद्धालुर्जीवः,

---

शंका-- सूत्रमें गति आदि प्रत्येक पदके साथ सप्तमी विभक्तिका निर्देश क्यों किया गया है?

समाधान -- उन गति आदि मार्गणाओंको जीवोंका आधार बतानेके लिये सप्तमी विभक्तिका निर्देश किया है।

इसी तरह सूत्रमें प्रत्येक पद के साथ तृतीया विभक्तिका निर्देश भी हो सकता है, इसमें कोई विरोध नही आता है।

शंका -- जब कि प्रत्येक पद के साथ सप्तमी विभक्ति पाई जाती है तो फिर तृतीया विभक्ति कैसे संभव है?

समाधान -- ऐसा कहना ठीक नहीं है, क्योंकि, इस सूत्रमें प्रत्येक पद के साथ जो सप्तमी विभक्तिका निर्देश किया है वह देशामर्शक है, इसलिये तृतीया विभक्तिका भी ग्रहण हो जाता है।

सूत्रोक्त गति आदि जिन पदोमें विभक्ति नहीं पायी जाती है, वहां पर भी 'आईमज्झ ांतवण्णसरलोवो' अर्थात आदि, मध्य और अन्तके वर्ण और स्वरका लोप हो जाता है। इस प्राकृतव्याकरणके सूत्रके नियमानुसार विभक्तिका लोप हो गया है। फिर भी उसका अस्तित्व समझ लेना चाहिये। अथवा

'लेस्साभवियसम्मत्तसण्णिआहारए' यह एक पद समझना चाहिये, इसलिये लेश्या आदि प्रत्येक पदमें विभक्तियां देखनेमें नही आती है।

शंका -- लोकमें अर्थात व्यावहारिक पदार्थोंका विचार करते समय भी चार प्रकारसे अन्वेषण देखा जाता है। वे चार प्रकार ये हैं -- मृगयिता, मृग्य, मार्गण और मार्गणोपाय। परंतु यहां लोकोत्तर पदार्थके विचारमें वे चारों प्रकार नहीं पाये जाते हैं, इसलिये मार्गणाका कथन करना नहीं बन सकता है?

समाधान -- यह कोई दोष नही हैं, क्योंकि, इस प्रकरणमें भी वे चारों प्रकार पाये जाते हैं। वे इस प्रकार हैं-- जीवादि पदार्थोंका श्रद्धान करनेवाला भव्यपुण्डरीक मृगयिता

चतुर्दशगुणविशिष्टजीवा मृग्यं, मृग्यस्याधारतामास्कंद्धन्ति मृगयितुः करणतामादधानानि वा गत्यादीनि मार्गणम्, विनेयोपाध्यायादयो मार्गणोपाय इति। सूत्रे शेषत्रितयं परिहृत्य किमिति' (मु. परिहृतमिति) मार्गणमेवोक्तमिति चेन्न, तस्य देशामर्शकत्वात्, तन्नान्तरीकत्वाद्वा।

गम्यत इति गतिः२ ('गम्यत इति गतिः' एवमुच्यमाने गमनक्रियापरिणतजीवप्राप्यद्रव्यादीनामपि गतिव्यपदेशः स्यात्? तन्न, गतिनामकर्मोदयोत्पन्नजीवपर्यायस्यैव गतित्वाभ्युपगमात्। गमनं वा गतिः। एवं सति ग्रामारामादिगमनस्यापि गतित्वं प्रसज्यते। तन्न, भवाद् भवसंक्रातेरेव विवक्षितत्वात्। गमनहेतुर्वा गतिरित्यपि भण्यमाने शकटादेरपि गतित्वं प्राप्नोति। तन्न, भवांतरगमनहेतोर्गतिनामकर्मणो गतित्वाभ्युपगमात्। जी. प्र., टी. अत्र मार्गणाप्रकरणे गतिनामकर्म न गृह्यते, वक्ष्यमाणनारकदिगतिप्रपंचस्य नारकादिपर्यायेष्वेव संभवात्। गो. जी., म. प्र., टी. १४६)। नातिव्याप्तिदोषः, सिद्धैः प्राप्यगुणाभावात्। न केवलज्ञानादयः प्राप्याः, तथात्मकैकस्मिन् प्राप्यप्रापकभावविरोधात। कषायादयो हि प्राप्याः, औपाधिकत्वात्। गम्यत इति गतिरित्युच्यमाने गमनक्रियापरिणतजीव -

----

अर्थात् लोकोत्तर पदार्थोंका अन्वेषण करनेवाला है। चौदह गुणस्थानोंसे युक्त जीव मृग्य अर्थात् अन्वेषण करने योग्य है। जो मृग्य अर्थात चौदह गुणस्थानविशिष्ट जीवोंके आधारभूत हैं, अथवा अन्वेषण करनेवाले भव्य जीवको अन्वेषण करनेमें अत्यन्त सहायक कारण हैं ऐसी गति आदिक मार्गणा हैं। शिष्य और उपाध्याय आदिक मार्गणा केउपाय हैं।

शंका -- इस सूत्रमें मृगयिता, मृग्य और मार्गणोपाय इन तीनको छोडकर केवल मार्गणाका ही उपदेश क्यों दिया गया है?

समाधान -- यह कहना ठीक नहीं है, क्योंकि गति आदि मार्गणावाचक पद देशामर्शक हैं, इसलिये इस सूत्रमें कही गई मार्गणाओंसे तत्संबन्धी शेष तीनोंका ग्रहण हो जाता है। अथवा मार्गणा पद शेष तीनोंका अविनाभावी है, इसलिये भी केवल मार्गणाका कथन करनेसे शेष तीनोंका ग्रहण हो जाता है।

जो प्राप्त की जाय उसे गति कहते हैं। गतिका ऐसा लक्षण करनेसे सिद्धोंके साथ अतिव्याप्ति दोष भी नहीं आता है, क्योंकि सिद्धोंके द्वारा प्राप्त करने योग्य गुणोंका अभाव है। यदि केवलज्ञानादि गुणोंको प्राप्त करने योग्य कहा जावे, सो भी नहीं बन सकता, क्योंकि केवलज्ञानस्वरूप एक आत्मामें प्राप्य-प्रापकभावका विरोध है। उपाधिजन्य होनेसे कषायादिक भावोंको ही प्राप्त करने योग्य कहा जा सकता है। परंतु वे सिद्धोंमे पाये नहीं जाते हैं, इसलिये सिद्धोंके साथ तो अतिव्याप्ति दोष नहीं आता है।

शंका -- जो प्राप्त की जाय उसे गति कहते हैं। गतिका ऐसा लक्षण करने पर गमनरूप क्रियामें परिणत जीवके द्वारा प्राप्त होने योग्य द्रव्यादिकको भी गति यह संज्ञा प्राप्त हो जावेगी, क्योंकि, गमनक्रियापरिणत जीवकेद्वारा द्रव्यादिक ही प्राप्त किये जाते हैं?

प्राप्यद्रव्यादीनामपि गतिव्यपदेश: स्यादिति चेन्न, गतिकर्मण: समुत्पन्नस्यात्मपर्यायस्य तत: कथञ्चिभ्देदादविरू द्धप्राप्तित: प्राप्तकर्मभावस्य गतित्वाभ्युपगमे पूर्वोक्तदोषानुपपत्ते:। भवाद्भवसंक्रान्तिर्वा गति:। सिद्धि१ (मु. सिद्धि-।) गतिस्तद्विपर्यासात्। उक्तं च ---

गइ-कम्म-विणिव्वत्ता जा चेट्ठा सा गई मुणेयव्वा।

जीवा हु चाउरंग गच्छंति त्ति य गई होइ२ (प्रा.पं. १, ५८. गइउदयजपज्जाया चउगइगमणस्स हेऊ वा हु गई। णारयतिरिक्ख माणुसदेवगइ त्ति य हवे चदुधा।। गो. जी. १४६.) ।।८४।।

प्रत्यक्षनिरतानीन्द्रियाणि। अक्षाणीन्द्रियाणि। अक्षमक्षं प्रति वर्तत इतिप्रत्यक्षं विषयोऽक्षजो बोधो वा। तत्र निरतानि व्यापृतानि इन्द्रियाणि। शब्दस्पर्शरसरू पगन्धज्ञानावरणकर्मणां क्षयोपशमाद् द्रव्येन्द्रियनिबन्धनादिन्द्रियाणीती यावत्। भावेन्द्रियकार्यत्वाद् द्रव्यस्येन्द्रियव्यपदेश:। नेयमदृष्टपरिकल्पना, कार्यकारणोपचारस्य

समाधान -- ऐसा कहना ठीक नहीं हैं क्योंकि गति नामकर्मके उदयसे जो आत्माके पर्याय उत्पन्न होती है वह आत्मासे कथंचित भिन्न है अत: उसकी प्राप्ति अविरूद्ध है। और इसीलिये प्राप्तिरूप क्रियाके कर्मपनेको प्राप्त नारकादि आत्मपर्यायके गतिपना माननेमें पूर्वोक्त दोष नहीं आता हैं।

अथवा, एक भवसे दूसरे भवमें जानेको गति कहते हैं। पूर्वमें जो गतिनामा नामकर्मके उदयसे प्राप्त होनेवाली पर्यायविशेषको अथवा एक भवसे दूसरे भवमें जानेको गति कह आये हैं, ठीक इससे विपरीतस्वभाववाली सिद्धगति होती है। कहा भी है ---

गतिनामा नामकर्मके उदयसे जो जीवकी चेष्टाविशेष उत्पन्न होती है उसे गति कहते हैं। अथवा जिसके निमित्तसे जीव चतुर्गतिमें जाते हैं उसे गति कहते हैं। ।।८४।।

जो प्रत्यक्षमें व्यापार करती हैं उन्हे इन्द्रियॉ कहते हैं। जिसका खुलासा इस प्रकार हैं-- अक्ष इन्द्रियको कहते हैं, और जो अक्ष अक्षके प्रति अर्थात् प्रत्येक इन्द्रियके प्रति रहता है उसे प्रत्यक्ष कहते हैं। जो कि इन्द्रियोंका विषय अथवा इन्द्रियजन्य ज्ञानरूप पडता है उस इन्द्रियविषय अथवा इन्द्रियज्ञानरूप प्रत्यक्षमें जो व्यापार करती हैं उन्हे इन्द्रियॉ कहते हैं। द्रव्येन्द्रियोंके निमित्तरू प ऐसे शब्द, स्पर्श, रस, रू प, और गन्ध नामक ज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशमसे इन्द्रियॉ होती हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है। क्षयोपशमरू प भावेन्द्रियोंके होने पर ही द्रव्येन्द्रियोंकी उत्पत्ति होती है, इसलिये भावेन्द्रिय कारण हैं और द्रव्येंद्रियां कार्य हैं और इसलिये द्रव्येन्द्रियोंको भी इन्द्रिय यह संज्ञा प्राप्त है। यह कोई अदृष्टकल्पना नहीं है, क्योंकि, कार्यगत धर्मका कारणमें और कारणगत धर्मका कार्यमें जगतमें प्रसिद्धरूपसे पाया जाता है।

जगति सुप्रसिद्धस्योपलम्भात्। इन्द्रियवैकल्यमनोऽनवस्थानानध्यवसायालोकाद्यभावावस्थायां क्षयोपशमस्य प्रत्यक्षविषयव्यापाराभावात्तत्रात्मनोऽनिन्द्रियत्वं स्यादिति चेन्न, गच्छतीति गौरिति व्युत्पादितस्य गोशब्दस्यागच्छद्गोपदार्थेऽपि प्रवृत्त्युपलम्भात्। भवतु तत्र रू ढिबललाभादिति चेदत्रापि तल्लाभादेवास्तु, न कश्चिद्दोष:। विषेषाभावतस्तेषां१ (इत आरभ्य 'इन्द्रिय' शब्दस्य व्याख्यान्तं यावत्समग्रपाठ: गो. जीवकांडस्य मदि-आवरण इत्यादि १६५ तमगाथाया: जीवतत्त्वप्रदीपिकाटीयाकया प्रायेण समान:।) सङ्करव्यतिकररू पेण२ (सर्वेषा युगपत्प्राप्ति सङ्कर:। परस्परविषयगमनं व्यतिकर:। न्या. कु. चं. पृ. ३६०) व्यापृति: व्याप्नोतीति चेन्न, प्रत्यक्षे३ (मु. नीतिनियमिते। 'नीति' इति पाठो नास्ति। गो. जी., जी. प्र. टी. १६५) निनियमिते रतानीति प्रतिपादनात। सङ्करव्यतिकराभ्यां व्यापृतिनिराकरणाय स्वविषयनिरतानीन्द्रियाणि इति वा वक्तव्यम्। स्वेषां विषय: स्वविषयस्तत्र निश्चयेन

शंका -- इन्द्रियोंकी विकलता, मनकी चंचलता, और अनध्यवसायके सद्भावमें तथा प्रकाशादिकके अभावरूप अवस्थामें क्षयोपशमका प्रत्यक्ष विषयमें व्यापार नही हो सकता है, इसलिये उस अवस्थामें आत्माकेअनिन्द्रियपना प्राप्त हो जायगा?

समाधान --- ऐसा नहीं है, क्योंकि, जो गमन करती है उसे गौ कहते हैं। इस तरह 'गौ' शब्दकी व्युत्पत्ति होने पर भी नहीं गमन करनेवाले गौ पदार्थमें भी उस शब्दकी प्रवृत्ति पाई जाती है।

शंका -- भले ही गोपदार्थमें रूढिके बलसे गमन नहीं करती हुई अवस्थामें भी गो-शब्दकी प्रवृत्ति होवे। किंतु इन्द्रियवैकल्यादिरूप अवस्थामें आत्माके इन्द्रियपना प्राप्त नहीं हो सकता है?

समाधान -- यदि ऐसा है तो आत्मामें भी इन्द्रियोंकी विकलता आदि कारणोंके रहने पर रूढिकेबलसे इन्द्रिय शब्दका व्यवहार मान लेना चाहिये। ऐसा मान लेनेमें कोई दोष नही आता है।

शंका -- इन्द्रियोंके नियामक विशेष कारणोंका अभाव होनेसे उनका संकर और व्यतिकररूपसे व्यापार होने लगेगा। अर्थात या तो वे इन्द्रियां एक दूसरी इन्द्रियके विषयको ग्रहण करेंगी या समस्त इन्द्रियोंका एकही साथ व्यापार होगा?

समाधान -- ऐसा कहना ठीक नहीं है, क्योंकि, 'प्रत्यक्षनिरतानि इन्द्रियाणि' यह पहले कह आये हैं। तदनुसार 'निरतानि' पदमें आये हुए 'नि' उपसर्गका अर्थ नियमित है और प्रत्यक्ष पदका अर्थ विषय या इन्द्रियजन्य ज्ञान है। इस प्रकार जो नियमित अपने अपने विषयमें या उस उस इन्द्रियसे उत्पन्न हुए ज्ञानमें 'रतानि' रत हैं अर्थात व्यापार करती हैं वे इन्द्रियाँ हैं यह पहले कह आये हैं, इसलिये संकर और व्यतिकर दोष नहीं आता हैं।